GL H 294.55
RAD

121367
LBSNAA

राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी
ademy of Administration
मसूरी
MUSSOORIE
पुस्तकालय
LIBRARY

121367

अवाप्ति संख्या
Accession No. ~~15254~~

वर्ग संख्या
Class No. GL H 294.55

पुस्तक संख्या
Book No. ~~राधा~~ RAD

राधास्वामी दयाल की दया राधास्वामी सहाय

सार बचन राधास्वामी

नसर यानी वार्तिक

जिसको कि

परम पुरुष पूरन धनी

स्वामीजी महाराज

ने

ज़बान मुबारक से फ़रमाया

राधास्वामी सतसंग

स्वामीबाग़

आगरा

प्रकाशक—

राधास्वामी ट्रस्ट
स्वामी बाग़, आगरा

पहली बार	२०००	प्रतियाँ	सन्	१८८४	ईस्वी
दूसरी बार	१०००	,,	,,	१८९८	,,
चौथी बार	१०००	,,	,,	१९१३	,,
पाँचवीं बार	१०००	,,	,,	१९२०	,,
छठी बार	१०००	,,	,,	१९२६	,,
सातवीं बार	१०००	,,	,,	१९३२	,,
आठवीं बार	१०००	,,	,,	१९४१	,,
नवीं बार	१०००	,,	,,	१९४६	,,
दसवीं बार	१०००	,,	,,	१९४९	,,
ग्यारहवीं बार	२०००	,,	,,	१९५५	,,
बारहवीं बार	३०००	,,	,,	१९५९	,,

सर्वाधिकार प्रकाशक द्वारा सुरक्षित

बारहवीं बार ३००० | **सन् १९५९** | **मूल्य अजिल्द २)** **सजिल्द ३)**

मूल्य ३.

मुद्रक—
दी कौरोनेशन प्रेस,
आगरा
फ़ोन नं० १७१

सार बचन राधास्वामी

नसर यानी वार्तिक

राधास्वामी दयाल की दया

राधास्वामी सहाय

सार बचन बार्तिक

पहला भाग

खुलासा उपदेश हुज़ूर राधास्वामी साहब का

बचन—यह जगत नाशमान है और सब असबाब भी इसका नाशमान है ॥

अक़्लमंद यानी चतुर मनुष्य वह है कि जिसने इसके कारोबार को अच्छी तरह जाँच करके और उसको फ़ानी यानी कल्पित और मिथ्या जान कर इस मनुष्य शरीर को मालिक कुल्ल का भजन सुमिरन करके सुफल किया और जो चीज़ें उस कर्त्ता ने अपनी दया से इस नर देही में दी हैं, उनसे लाभ उठा कर जौहर बे-बहा यानी तत्त्व वस्तु अनमोल जो कि सुर्त है यानी जीवात्मा है, उसको स्थान असली पर पहुँचाया ॥

दफ़ा १—जीवात्मा अर्थात् सुरत को रूह कहते हैं और यह सब से ऊँचे स्थान यानी सत्तनाम और राधास्वामी पद से उतर कर इस तन में आकर ठहरी हुई है और तीन गुन और पाँच तत्त्व और दस इन्द्रिय और मन वग़ैरा में बँध गई है और ऐसे बंधन, उसके, साथ शरीर और उसके सम्बन्धी पदार्थों के, पड़ गये हैं कि उनसे छूटना कठिन हो गया। इसी छूटने को मोक्ष कहते हैं। और बंधन अंतरी साथ इन्द्रिय और तत्त्व और मन वग़ैरा के हैं और बंधन बाहरी साथ पदार्थों और कुटुम्ब और क़बीले के हैं। इन दोनों बंधनों में जीवात्मा यानी सुरत ऐसी फँस गई है कि उसको अपने स्थान असली की याद भी जाती रही और इस क़दर मंज़िल दूर हो गई कि अब इसका लौटना स्थान असली को बिना मेहर मुर्शिद कामिल यानी सतगुरु पूरे के कठिन हो गया। सिर्फ़ काम इतना है कि इन्सान यानी मनुष्य अपनी सुर्त यानी रूह को उसके ख़ज़ाने और निकास यानी मुक़ाम सत्त-नाम और राधास्वामी में पहुँचावे। और जब तक यह

नहीं होगा तब तक ख़ुशी और रंज और जिस क़दर दुख और सुख दुनिया के हैं, उनसे छूटना नहीं हो सकता ॥

२—मतलब और मंशा कुल मतों का और यही तरीक़ सब अगले महात्माओं का रहा है कि जिस तरह हो सके रूह यानी सुर्त को उसके भंडार में पहुँचाना और पहुँचा हुआ उसी को कहते हैं कि जिसने अभ्यास यानी अमल करके अपनी रूह को स्थान असली पर पहुँचाया और कुल बंधन बाहरी और अंतरी और स्थूल और सूक्ष्म और कारण को तोड़ करके मन को संसारी प्रपंच यानी दुनिया से न्यारा किया। कामिल[1] और आमिल[2] और सच्चे आशिक़ और प्रेमी और पूरे भक्त और सच्चे ज्ञानी और पूरे साध वही हैं जो अख़ीर मंज़िल पर पहुँच गये और जो कोई पहुँचे हुओं का ज़िक्र[3] करते हैं या उनके बचनों को सिर्फ़ पढ़ते हैं या सुनाते हैं और आप मंज़िल पर नहीं पहुँचे और मंज़िल पर पहुँचने का अभ्यास भी नहीं करते

१—पूरा। २—अभ्यासी। ३—वर्णन।

हैं, उनका नाम आलिम यानी विद्यावान और बाचक है ॥

३—जितने आचार्य और महात्मा और अवतार और पैग़म्बर हर एक मज़हब में हुये, वे सब अपने अभ्यास के ज़ोर से अन्तर में, तरफ़ मुक़ाम असली के, चले। पर सब के सब धुर स्थान तक नहीं पहुंचे। सो बहुत से तो मंज़िल[१] पहली पर और कोई कोई दूसरी मंज़िल पर और कोई बिरले साध और प्रेमी मंज़िल तीसरी तक पहुँचे और सिर्फ़ संत मंज़िल पाँचवीं यानी सत्तनाम पर और कोई बिरले संत मंज़िल आठवीं यानी राधास्वामी पद तक पहुंचे। इसी स्थान से आदि में सुर्त का तनज़्ज़ुल यानी उतार हुआ है और वही सुरत जैसे कि उतरती चली आई, वैसे ही उसका निकास नीचे के मुक़ामों से यानी सत्तलोक वग़ैरा से मालूम हुआ और जो इस मुक़ाम के भी नीचे रहे, उनको उसी मुक़ाम से जहाँ तक कि वे पहुंचे, सुर्त यानी रूह का निकास दिखलाई दिया और

१—स्थान।

चूँकि उनको पूरे गुरू नहीं मिले, इस वास्ते उन्होंने उसी स्थान को सुर्त यानी रूह का भंडार और वहाँ के मालिक को कुल्ल नीचे की रचना का मालिक और कर्त्ता ठहरा कर, अपने २ संगियों को उसी स्थान और वहाँ के मालिक की उपासना यानी पूजा का उपदेश किया और उसी का इष्ट और ऐतक़ाद[१] बँधवाया ॥

४—अब समझना चाहिये कि राधास्वामी पद सबसे ऊँचा मुक़ाम है और यही नाम कुल्ल मालिक और सच्चे साहब और सच्चे ख़ुदा का है और इस मुक़ाम से दो स्थान नीचे सत्तनाम का मुक़ाम है कि जिसको संतों ने सत्तलोक और सच-खंड और सार शब्द और सत्त शब्द और सत्त नाम और सत्त पुरुष करके बयान किया है। इस से मालूम होगा कि यह दो स्थान विश्राम संत और परम संत के हैं और संतों का दर्जा इसी सबब से सबसे ऊँचा है। इन स्थानों पर माया नहीं है और मन भी नहीं है और यह स्थान कुल नीचे

१—निश्चय।

के स्थानों और तमाम रचना के मुहीत हैं यानी रचना इनके नीचे और इनके घेर में है। राधास्वामी पद को अकह और अनाम भी कहते हैं, क्योंकि यही पद अपार और अनंत और अनादि है और बाक़ी के सब मुक़ाम इसी से प्रगट यानी पैदा हुये और सच्चा ला-मकान जिसको स्थान भी नहीं कह सकते, इसी को कहते हैं।

५—अब मालूम करना चाहिये कि साध और ज्ञानी और भक्त और अवतार और पैग़म्बर और और सब महात्मा जोकि निज स्थान पर न पहुँचे, उनका दर्जा संतों से नीचा और बहुत कम है और चूंकि वे राह में न्यारे २ स्थानों पर रह गये, इसी सबब से न्यारे २ मत संसार में जारी हो गये यानी जो कोई जिस मंज़िल पर पहुंचा, उसने उसी मंज़िल को आख़िरी मुक़ाम और उसी मालिक को बे-अंत और अपार समझा और उसी की पूजा का उपदेश किया और सबब इसका यह है कि मालिक कुल्ल ने अपनी क़ुदरत से हर एक स्थान को बतौर अक्स यानी छाया निज स्थान के रचा है

ओर थोड़ी बहुत वही कैफ़ियत और हालत कि जो ऊँचे स्थान पर है, कुछ २ उसी क़िस्म की हालत और कैफ़ियत नीचे के स्थानों पर भी पाई जाती है। पर हर एक स्थान की कैफ़ियत और हालत और उसके क़याम यानी ठहराव में बड़ा फ़र्क़ है और जो जो रचना हर एक स्थान पर देखने में आती है, वह भी न्यारा २ है और दर्जे-बदर्जे लतीफ़ यानी सूक्ष्म और विशेष सूक्ष्म और अति सूक्ष्म और पाक यानी निर्मल और विशेष निर्मल और महा निर्मल होती चली गई है। मगर यह हाल उसी को मालूम हो सकता है जिसने सब स्थानों की सैर की है और नहीं तो जिस स्थान पर जो पहुँचा, उसने उसी स्थान के मालिक के स्वरूप और प्रकाश को देख कर उसी को बे-अंत और बे-हद्द और ख़ुदा और परमेश्वर बतलाया और इस क़दर आनन्द और सरूर उसको हासिल हुआ कि होश व हवास उसके सब जाते रहे और ऐसी हालत मस्ती और शौक़ की पैदा हुई कि जिसका बयान नहीं हो सकता ॥

६—और मालूम होवे कि हर स्थान पर सुरत पहुँचने वाले की कैफ़ियत अलेहदा है और वही कुल्ल नीचे के स्थानों में व्यापक और मुख़्तार मालूम होती है। जैसे कि जो कोई पहिले या दूसरे स्थान पर ठहरा, उसने वहाँ पहुँच कर देखा कि सुरत यानी मालिक उस स्थान का नीचे के सब स्थानों में व्यापक और उन स्थानों का कर्ता है और उसी से कुल्ल रचना यानी पैदाइश नीचे की ज़ाहिर हुई और उसी के आसरे क़ायम है, तब उसने उसी को मालिक ठहराया और अपने सेवकों और सतसंगियों को उसी स्थान की भक्ति और पूजा के वास्ते उपदेश किया और आगे का भेद न जाना क्योंकि आगे का भेद सिवाय संत सतगुरू के और कोई नहीं जानता है और संत सतगुरू उनको नहीं मिले, जो मिलते तो भेद आगे का बतलाते और उनका रास्ता चलाते। इसी तौर पर हर एक शख़्स जिसने अपने अन्तर में एक या दो या तीन स्थान तै किये, पूरा और पहुँचा हुआ कहा गया और हाल यह है कि

पहिले ही स्थान पर पहुँचने पर सर्व शक्ति साधू को हासिल हो जाती हैं। इस वास्ते ब-सबब हासिल हो जाने शक्तियों और क़ुदरत और ताक़त के उस पहुँचने वाले को महात्मा और कामिल[1] क़रार दिया गया और इसमें कुछ शक भी नहीं कि यह दर्जा ब-निस्बत दर्जात सिफ़ली यानी नीचे के बहुत ऊँचा है और कदूरत दुनियावी और जिस्मानी यानी मलीनता संसारी और देही की उस पहुँचने वाले में बिल्कुल नहीं रहती है॥

७—ऊपर ज़िक्र[2] हुआ है कि सत्तनाम स्थान जिस को सत्तलोक और सचखंड भी कहते हैं, निहायत ऊँचा है और संतों का दरबार है और उसके ऊपर तीन स्थान और हैं कि जिनको किसी संत ने नहीं खोला। अब परम पुरुष पूरन धनी राधास्वामी दयाल ने जीवों पर निहायत कृपा करके उन मुक़ामों को खोल कर साफ़ साफ़ वर्णन किया है और उनका भेद और कैफ़ियत भी ज़ाहिर की और सब से ऊँचा और धुर स्थान

१—पूरा। २—वर्णन।

राधास्वामी पद, जो सब की आदि और भंडार है और परम संतों का निज महल है, उसका भेद दया करके बख़्शा। इसी स्थान से शुरू[१] में सुरत उतरी थी और इसके नीचे जितने स्थान हैं, वे सब सुरत के उतार के हैं और अब जीवात्मा यानी सुरत या रूह इस जिस्म यानी देह में सहसदलकँवल के नीचे ठहरी हुई है और वहाँ से इसकी रोशनी और ताक़त तमाम जिस्म में उतर कर और फैल कर मन और इन्द्रियों के द्वारे कुल्ल जिस्मानी और नफ़सानी यानी स्थूल और सूक्ष्म कारज दे रही है॥

८—मन दो हैं। एक ब्रह्मांडी और दूसरा पिंडी। ब्रह्मांडी मन का स्थान त्रिकुटी और सहसदलकँवल में है और इसी को ब्रह्म और परम ईश्वर और परम आत्मा और ख़ुदा कहते हैं और पिंडी मन का स्थान नेत्रों के पीछे और हृदय में है। यही मन सुरत की मदद से कुल्ल कारोबार दुनिया का कर रहा है। सुरत यानी रूह को इस क़दर

१—आदि।

प्रीति, साथ मन के, हो गई है कि उसके संग बिल्कुल रुजू उसकी नीचे की तरफ़ यानी दर्जात सिफ़ली में हो रही है और इसी से मन और इन्द्रिय वग़ैरा को ताक़त कारोबार की हासिल है। जो जीवात्मा यानी सुरत यानी रूह मुतवज्जह अपने स्थान असली की तरफ़ होवे तो असबाब[1] दुनिया की तरफ़ से तवज्जह घटती जावे और सूरत ख़लासी यानी मोक्ष की निकल आवे। जब सुरत ब्रह्मांडी मन के स्थानों के परे अपने स्थान असली यानी सत्तलोक में पहुँचेगी, तब कुल्ल बंधन कारण और सूक्ष्म और स्थूल और देह और इन्द्रिय और मन के टूट जावेंगे और व्यवहार ऐसे पहुँचने वाले का सिर्फ़ कारज मात्र यानी ज़रूरी रह जावेगा और वह भी ब-इख़्तियार अपने यानी जब चाहे जब मुतल्लक़ तोड़ दे। ख़ुलासा यह है कि जब तक सुरत यानी जीवात्मा इन क़ैदों को जो कि साथ स्थूल सूक्ष्म और कारण देह यानी जिस्म और मन और इन्द्रियों के पड़ गई हैं, तोड़ कर या कम

१—पदार्थ।

कर के और इन मलीन स्थानों को जो पिंड और ब्रह्मांड के ताल्लुक़ हैं, छोड़ कर तरफ़ स्थान असली के रुजू न करेगी और ब्रह्मांडी मन के परे न पहुँचेगी तब तक जड़ चेतन की गाँठ न खुलेगी और कसीफ़ यानी जड़ पदार्थ यह हैं, मन और इन्द्रिय और देह यानी जिस्म और कुल्ल संसारी व्यवहार और भोग वग़ैरा और सुरत लतीफ़ और चैतन्य है और इन दोनों की मिलौनी का नाम गाँठ है। सो जब तक यह गाँठ न खुले यानी मिलौनी माया की दूर न होवे, तब तक उसका नाम मोक्ष नहीं हो सकता और न कभी बीज आसा और तृष्णा का नाश होगा॥

९—हरचन्द कि अभ्यास के बल से और कुछ रास्ता तै करने से इनका ज़ोर किसी क़दर कम हो जावेगा या कुछ दिनों तक असल में दब जाना और ज़ाहिर में जाता रहना भी इनका मालूम पड़ेगा पर बिल्कुल दूर होना, जब तक कि सत्तलोक में सुरत न पहुँचेगी, नहीं हो सकता है, क्योंकि जो सत्तलोक तक न पहुँची

तो जब ब्रह्मांडी मन और माया का असर होगा और जब भोग और बिलास भारी झकोला देंगे, तब ख़ौफ़ है कि साधू स्थान पहिले और दूसरे का यानी जोकि सहसदलकँवल तक या उसके ऊपर त्रिकुटी तक पहुँच गया है, उसको न सम्हाल सकेगा और अचरज नहीं कि फिसल जावे और चाहे फिर जल्द होश में आकर भोगों से नफ़रत करके फिर अपने स्थान को अभ्यास करके और गुरू की दया से सम्हाल ले पर दाग़ी होने में उसके कुछ संदेह नहीं। इस वास्ते मुनासिब है कि प्रेमी अभ्यासी अपनी सुरत को ऐसे ऊँचे स्थान पर पहुँचावे कि जहाँ आसा और तृष्णा किसी क़िस्म की और विषय भोग की वासना का चाहे वह संसारी होवे और चाहे परमार्थी, नाम और निशान भी नहीं है। सिर्फ़ परम पुरुष पूरन धनी राधास्वामी कुल्ल-मालिक के दर्शन ही का आनन्द और बिलास है। तब अलबत्ता वह शख़्स बच जावेगा और फिर किसी तरह की रुजू उसकी इस तरफ़ को मुतलक़ न होगी और

तब माया के घेर से बाहर हो जावेगा और फिर वही अभ्यासी संत पदवी को प्राप्त हुआ। यही सबब है कि बड़े बड़े अवतार और ऋषीश्वर और मुनीश्वर और औलिया और पैग़म्बर अपने अपने वक़्त पर माया के चक्कर में आ गये और अपने पद को उस वक़्त भूल कर धोखा खा गये जैसे कि नारद और व्यास और शृंगी ऋषि और पाराशर और ब्रह्मा और महादेव जी और अवतार वग़ैरा। इन सब का हाल जुदा जुदा लिखा है और जो कि वह थोड़ा या बहुत सब को मालूम है, इस वास्ते इस स्थान पर उसकी शरह करना मुनासिब नहीं समझा गया॥

१०—ऊपर जो इशारा किया गया उसका मतलब यह नहीं है कि यह लोग बिल्कुल माया के क़ैदी हो गये या किसी तरह से उनका भारी नुक़सान हुआ, बल्कि ग़र्ज़ यह है कि इनको माया ने अपना ज़ोर दिखला कर धोखा दे दिया और सबब इसका ज़ाहिर है कि वे हरचन्द बड़े स्थान पर पहुँचे थे, पर उस स्थान तक नहीं

कि जो माया के घेर से बाहर है और मालूम होवे कि वह धुर स्थान सत्तनाम और राधास्वामी है। अब तफ़सील उतरने दर्जे सुरत की लिखी जाती है। इससे साफ़ मालूम होगा कि असली स्थान सुरत का किस क़दर दूर और ऊँचा है और अवतार और पैग़म्बर और औलिया और देवता वग़ैरा कौन कौन से स्थान से प्रगट हुए और हद्द उनकी कहाँ तक है॥

११—पहिला यानी धुर स्थान सब से ऊँचा और बड़ा कि जिसका नाम स्थान भी नहीं कहा जाता है, उसको राधास्वामी अनामी और अकह कहते हैं। यह आदि और अन्त सब का है और कुल्ल का मुहीत यानी सब उसके घेर में हैं और हर जगह इसी स्थान की दया और शक्ति अंश रूप से काम दे रही है और आदि में इसी स्थान से मौज उठी और शब्द रूप होकर नीचे उतरी। यह स्थान परम संतों का है। सिवाय बिरले संतों के यहाँ और कोई नहीं पहुँचा और जो पहुँचा उसी का नाम परम संत है॥

१२—राधास्वामी पद के नीचे दो स्थान बीच में छोड़ कर सत्तनाम का स्थान यानी सत्तलोक महा प्रकाशवान और पाक और निर्मल है और महज़ रूहानी यानी चैतन्य ही चैतन्य है और कुल नीचे की रचना का आदि और अंत यही है और इस पद से दो अंश उतरीं और वह कुल नीचे के स्थानों में व्यापक हुईं। संत मत में सच्चा मालिक और कर्त्ता यानी पैदा करने वाला इसी को कहते हैं और सत्त शब्द का ज़हूर इसी स्थान से हुआ और इस को महा नाद और सार शब्द भी कहते हैं और सत्त पुरुष और आदि पुरुष भी इसी का नाम है। यह अजर, अमर, अविनाशी और सदा एक रस है। संत इसी पुरुष का रूप यानी अवतार हैं। यह स्थान दयाल पुरुष का है। यहाँ सदा दया और मेहर ही मेहर और आनंद ही आनंद है। इस स्थान में बे-शुमार हंस यानी प्रेमी सुरतें अथवा भक्त ज़ुदा २ दीपों में बसते हैं और सत्त पुरुष के दर्शन का बिलास और अमी का अहार करते हैं और यहाँ काल और कर्म और क्रोध और दंड और पुण्य और

पाप और दुख और संताप का नाम और निशान भी नहीं है। इस वास्ते इस पुरुष को दयाल और रहमान कहते हैं और सच्चे और कामिल फ़क़ीरों ने इसी मुक़ाम को हूत कहा है और इसी मुक़ाम पर सुरत राधास्वामी पद से उतर कर ठहरी और यहाँ से फिर नीचे उतरी। जो कोई इष्ट राधास्वामी का बाँध कर और उनके चरणों में दृढ़ निश्चय कर के सब स्थानों को तै करता हुआ इस स्थान यानी सत्तलोक तक पहुँचा, वही राधास्वामी पद में भी पहुँच सकता है। और किसी तरह से नहीं पहुँच सकता है। इस वास्ते ख़ास उपासना संतों की सत्त पुरुष राधास्वामी की है और उनका इष्ट और मालिक सत्त पुरुष राधास्वामी हैं और इस स्थान पर पहुँचने वाले का नाम संत और सतगुरु है। और कोई संत और सतगुरु पदवी का अधिकारी नहीं है॥

१३—सत्तलोक के नीचे दो स्थान छोड़ कर मुक़ाम सुन्न यानी दसवाँ द्वार है, जहाँ कि सुरत सत्त लोक से उतर कर ठहरी और फिर वहाँ से ब्रह्मांड में फैली और फिर पिंड में उतरी। संतों का आत्म

पद और फ़क़ीरों का मुक़ाम हाहूत यही है यानी जब इस मुक़ाम पर सुरत पाँच तत्त्व और तीन गुण और कारण व सूक्ष्म व स्थूल देह से अलेहदा यानी निर्मल हो कर पहुँचती है, तब क़ाबिल भक्ति अपने मालिक के होती है और यहाँ से प्रेम का बल लेकर आगे को चल कर सत्त लोक और फिर राधास्वामी पद में पहुँचती है। इस स्थान पर पहुँचने वाले को राधास्वामी यानी संत मत में पूरा साध कहते हैं। इस स्थान पर भी हंसों यानी प्रेमी सुरतों की मंडलियाँ रहती हैं और अमृत का अहार और तरह २ के आनन्द और बिलास में मगन रहती हैं और पुरुष और प्रकृति का ज़हूर इसी स्थान से हुआ। इसी को पार-ब्रह्म पद कहते हैं॥

१४—सुन्न यानी दसवें द्वार के नीचे मुक़ाम त्रिकुटी है कि जिसको गगन भी कहते हैं। ब्रह्म और प्रणव यानी ओंकार पद इसी स्थान को कहते हैं और सच्चे फ़क़ीरों ने इसी मुक़ाम को अर्शे-अज़ीम और आलमे-लाहूत कहा है। जोगेश्वर और सच्चे और पूरे ज्ञानी यहाँ तक पहुँचे। और

यहाँ से महा सूक्ष्म तीन गुण और पाँच तत्त्व और वेद और क़ुरान और सरावगियों का आदि पुराण और और किताब आसमानी की आवाज़ और कुल रचना यानी पैदाइश का सूक्ष्म यानी लतीफ़ मसाला और ईश्वरी माया यानी शक्ति प्रकट हुई और अवतार दर्जे आला जैसे राम और कृष्ण और जोगेश्वर जैसे व्यास और वशिष्ठ और ऋषभदेव सरावगियों के, इसी स्थान से प्रगट हुये और महा आकाश भी नाम इसी स्थान का है। और चैतन्य प्राण भी यहाँ से ज़ाहिर हुये। और इस स्थान के मालिक को प्राण पुरुष और ख़ुदाय-अज़ीम भी कहते हैं और संत उसको ब्रह्मांडी मन कहते हैं॥

१५—इसके नीचे स्थान सहसदलकँवल का है और निरंजन ज्योति और शिव शक्ति और लक्ष्मी नारायण और नारायण ज्योति स्वरूप और श्याम सुन्दर और अर्श और ख़ुदा नाम इसी मुक़ाम के हैं। संत मत में इसी स्थान की साधना अभ्यासियों को अव्वल में कराई जाती है। कुछ अवतार दर्जे दोयम के और पैग़म्बर दर्जे आला के

और औलिया वग़ैरा और जोगी दर्जे आला, इसी स्थान से प्रगट होते हैं और इसी में समाते हैं और फ़क़ीर और संत इसी को निज मन कहते हैं। इसी स्थान से तन्मात्रा तत्त्वों की पैदा हुई और उसके पीछे स्थूल तत्त्व और इन्द्रियाँ और प्राण और प्रकृतियाँ प्रगट हुईं। इसी स्थान का अक्स यानी छाया पहिले नुक़्ते-सुवेदा यानी तिल में जो आँखों के पीछे है और फिर दोनों आँखों में ठहरी हुई है। जाग्रत अवस्था में जीवात्मा का स्थान इसी तिल में है और सहसदलकँवल से चिदाकाश, जिसको बाज़े ज्ञानी ब्रह्म कहते हैं, प्रगट होकर तमाम देह यानी पिंड में और कुल्ल रचना में जो इस मुक़ाम के नीचे है, फैला और उसी चैतन्य आकाश की क़ुदरत का ज़हूर सब नीचे की रचना में है यानी यही आकाश चैतन्य रूप कुल्ल नीचे की रचना का चैतन्य करने वाला है। यहाँ तक तफ़सील दर्जात उलवी[1] यानी आस्मानी की ख़त्म हुई। इस स्थान के नीचे स्थान ब्रह्मा, विष्णु और महादेव का है और

१—ऊँचे।

वह रूप इन देवताओं का है। संत और फ़क़ीर जीवात्मा यानी सुरत को आँखों के मुक़ाम से अव्वल इसी स्थान की तरफ़ ऊँचे को चढ़ाते हैं और सिवाय इसके दूसरा रास्ता चढ़ने का नहीं है॥

१६—यहाँ तक दर्जे शब्द यानी नाद के मुक़र्रर हैं। मुताबिक़ तादाद इन स्थानों के यानी सत्तलोक से सहसदलकँवल तक पाँच शब्द भी हैं कि वे मुर्शिद कामिल यानी संत सतगुरू पूरे से मालूम हो सकते हैं। हर एक मुक़ाम का शब्द अलेहदा है और उसका भेद भी जुदा है। पाँचवाँ शब्द सत्तलोक में है और उसके परे जो शब्द की धार है, उसका बयान क्लाम में या लिखने में नहीं आ सकता और न उसका यहाँ कोई नमूना है कि जिससे उस आवाज़ का अनुमान कराया जावे। वह शब्द उस मंज़िल पर पहुँचने के वक़्त अभ्यासी को मालूम होगा। यह पाँच शब्द निशान उन पाँच स्थानों के हैं और उन्हीं की धुन पकड़ कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर दर्जे-बदर्जे ऊँचे की तरफ़ यानी धुर स्थान तक सुरत

चढ़ सकती है। और किसी जुगत से, ख़ास कर इस कलियुग में, सुरत का चढ़ना हर्गिज़ हर्गिज़ मुमकिन नहीं है।

१७—मालूम होवे कि धुर स्थान यानी अंत पद जो राधास्वामी है, उसमें रूप और रंग और रेखा नहीं है, बल्कि शब्द भी वहाँ गुप्त है। वहाँ का हाल कुछ कहने और लिखने में नहीं आ सकता। वह विश्राम का स्थान परम संतों का है॥

१८—जैसे कि सत्तलोक से सहसदलकँवल तक छः मुक़ाम उलवी यानी आस्मानी हैं, इसी तरह छः स्थान सिफ़ली यानी पिंड के भी उनके नीचे हैं जो कि असल में अक्स यानी छाया उन ऊँचे स्थानों की हैं और नाम और स्थान उनके जुदा २ लिखे जाते हैं। हरचन्द कि मुताबिक़ उपदेश हुज़ूर राधास्वामी साहब के और ब-मुक़ाबले उस आसान और सहज जुक्ति के जो उन्होंने दया करके प्रकट की, अब अभ्यासी को कुछ ज़रूरत तै करने उन नीचे के मुक़ामों की नहीं रही, फिर भी वास्ते इत्तिला और समझने के और दूर करने

शक और संशय और ग़लती के जो कि इस वक़्त में वाचक ज्ञानियों और विद्यावानों ने बहुत पैदा कर दिये हैं, इन नीचे के मुक़ामों का भी हाल थोड़ा सा लिखना मुनासिब और ज़रूर मालूम हुआ। इन छः मुक़ामों को षट चक्र कहते हैं और यह सब मुक़ाम पिंड यानी देह से ताल्लुक़[1] रखते हैं और जो उलवी यानी आस्मानी हैं, उनका ताल्लुक़ ब्रह्मांड से है और ब्रह्मांड के परे॥

१६—पहिला चक्र दोनों आँखों के पीछे है और यहाँ बासा सुरत यानी रूह का है और वह इसी मुक़ाम से पिंड में दर्जे-बदर्जे नीचे के पाँच चक्रों में होकर फैली। इसका नाम परमात्मा है और बहुतेरे मत और मज़हबों का ख़ुदा और ब्रह्म और भगवान यही है और यही मुक़ाम जाग्रत अवस्था असली जीव का है और यहाँ से भी पैग़म्बर और अवतार और वली और योगी और सिद्ध प्रकट हुए॥

२०—दूसरे चक्र का मुक़ाम कंठ यानी गले में

१—संबंध।

है। इस जगह सुरत यानी जीवात्मा का अक्स कंठ चक्र में ठहर कर स्वप्न की रचना दिखलाता है और विराट स्वरूप भगवान और आत्म पद बहुत से मज़हब और मतों का यही है और देही के प्राण का स्थान भी यही है॥

२१—तीसरा चक्र हृदय में है और दिल यानी पिंडी मन का यही स्थान है और शिव शक्ति की छाया का इस जगह पर बासा है। इस स्थान से इन्तज़ाम यानी बन्दोबस्त कुल्ल पिंड का हो रहा है। पर मालूम होवे कि यहाँ पिंड यानी जिस्म से मतलब सूक्ष्म शरीर से है और संकल्प विकल्प सब इसी स्थान से पैदा होते हैं। रंज और ख़ुशी और ख़ौफ़ और उम्मीद और दुख और सुख का भी असर इसी स्थान पर होता है॥

२२—चौथा चक्र नाभि कँवल। इस जगह पर विष्णु और लक्ष्मी का बासा है और परवरिश तन की इसी मुक़ाम से हो रही है और भंडार प्राण कसीफ़ यानी स्थूल पवन का इसी स्थान पर है॥

२३—पाँचवाँ इन्द्री कँवल। इस जगह पर ब्रह्मा और सावित्री का बासा है। पैदाइश जिस्म स्थूल की और उसकी ताक़त और काम वग़ैरे का ज़हूर इसी स्थान से है।

२४—छठा गुदा चक्र। इस स्थान पर गणेश का बासा है और जो कि अगले वक़्त में प्राणायाम यानी अष्टाँग योग का अभ्यास इसी मुक़ाम से शुरू किया जाता था, इस सबब से अव्वल यानी प्रथम पूजा मालिक छठे चक्र की यानी गणेशजी की हर काम में मुक़र्रर की गई॥

२५—अब मालूम होवे कि यह सब स्थान उलवी[1] और सिफ़ली[2] अंतर में हैं। बाहर के स्थानों से कुछ ग़र्ज़ नहीं है। दर्जात सिफ़ली गुदा चक्र से आँखों के नीचे तक ख़त्म हुये। इस वास्ते पिंड की हद्द आँखों तक है और इसी को नौ द्वार का पसारा भी कहते हैं और वह नौ द्वार यह हैं। दो सूराख़ आँखों के, दो सूराख़ कानों के, दो सूराख़ नाक के, एक सूराख़ मुख का और एक सूराख़ इन्द्री और एक सूराख़ गुदा का॥

१—ऊँचे। २—नीचे।

२६—आँखों के ऊपर मैदान सहसदलकँवल का शुरू हुआ और यही शुरू ब्रह्मांड की है और यह हद्द दसवें द्वार के नीचे तक ख़त्म हो जाती है यानी स्थान प्रणव तक और प्रणव के ऊपर पार-ब्रह्मांड कहलाता है और मुताबिक़ संत मत के दर्जात सिफ़ली, स्थूल सरगुन में दाख़िल हैं और दो स्थान सहसदलकँवल और त्रिकुटी के, निर्मल सरगुन कहलाते हैं और इस के परे का स्थान यानी सुन्न, निरगुन ख़ालिस कहलाता है और उसके पार देश संतों का शुरू होता है। इसी सबब से कहा गया है कि स्थान संतों का सरगुन और निरगुन के पार है और यही सबब है कि कृष्ण महाराज ने अर्जुन को उपदेश किया कि वेदों की हद्द से कि वह त्रिगुण-आत्मक यानी सरगुन है, पार हो, तब असल मुक़ाम पावेगा। और भेद और कैफ़ियत रचना वग़ैरा की और जो जो शक्ति और क़ुदरत कि इन सब स्थानों में रक्खी गई है, बहुत से बहुत है। यह सब हाल सच्चे अभ्यासी को सतगुरू पूरे से मालूम होगा और अपने अभ्यास के वक़्त वह आप देखता जावेगा॥

२७—अब इस बात को ज़ाहिर करना ज़रूर है कि जब पिछले साध और जोगेश्वर और और महात्माओं ने देखा कि भेद स्थान उलवी यानी आसमानी का बहुत बारीक है, हर एक की ताक़त उसके समझने की नहीं है और अभ्यास भी उसका प्राणायाम के वसीले से बहुत कठिन है, ख़ास कर पिछले वक्त में जब कि सिवाय ब्राह्मणों के और किसी क़ौम को हुक्म मज़हबी किताबों के पढ़ने का नहीं था, तब उन्होंने अव्वल भेद सिर्फ़ स्थान सिफ़ली[1] का प्रकट किया और भेद स्थान उलवी[2] को गुप्त रक्खा, इस मतलब से कि रफ़्ते रफ़्ते जैसे अभ्यासी चढ़ता जावेगा, वैसे ही आगे का भेद उसको जताया जावेगा, पर यह मार्ग और उसका अभ्यास इस क़दर थक गया कि अभ्यासी स्थान सिफ़ली के भी बहुत कम मिले। फिर रफ़्ते रफ़्ते उस वक़्त के बुज़ुर्गों ने मसलहत वक़्त समझ कर कुल जीवों को जो कि बिलकुल मूर्ख और अनजान थे, अवतारों और देवताओं वग़ैरा की बाहर-

१ नीचे। २ ऊँचे।

मुखी पूजा में लगाया, इस ख़्याल से कि यह नाम और रूप जो असल में अन्तरी मुक़ामों के थे, याद करके उनकी धारना अव्वल बाहरमुखी करें और फिर अन्तर में लगें। पर आम लोगों से यह काम भी दुरुस्त और पूरा न बना। तब बाज़े प्रेमियों ने वास्ते आसानी अभ्यास के बाज़े अवतार और देवता दर्जे आला की मूरत ध्यान करने के लिये और सुरत और दृष्टि ठहराने के वास्ते बनाई। मगर रोज़गारियों ने इस मौक़े को अपने मुफ़ीद-मतलब देख कर मंदिर और मूरतें बड़े बड़े अवतार और देवताओं की, धनवालों को तरग़ीब[१] देकर यानी बहला और फुसला कर, बनवानी शुरू कीं और अपने रोज़गार के लिये उनकी पूजा बहुत ज़ोर और शोर के साथ जारी कराई और पुरानी किताबों को जिन में अभ्यास और उपासना का भेद लिखा था, गुप्त करना शुरू किया। इसी तरह पर आहिस्ता आहिस्ता पूजा अवतार और देवताओं की मूरतों की आम जारी होगई और हाल यह है कि ऐसी पूजा करने में किसी को कुछ तकलीफ़

१—समझौती।

नहीं होती, हर एक शख़्स आसानी से कर सकता है। इस सबब से सब इसी काम में लग गए और अन्तर का भेद रोज़-बरोज़ गुप्त होता गया और सब के सब नक़ली परमार्थी होते चले गये और रफ़्ते-रफ़्ते तमाम मुल्क में यही चाल जारी हो गई और संसारी और भोगी लोगों को यह पूजा बहुत पसन्द आई क्योंकि वे अपने मन के मुआ-फ़िक़ पूजा करने लगे और उसमें भी माया के भोग और बिलास का रस लेने लगे॥

२८—अब कि कलियुग का बहुत ज़ोर और शोर के साथ ज़हूर हुआ और जीवों को अनेक तरह के दुःखों में जैसे मुफ़लिसी और बीमारी और मरी और झगड़े और बखेड़े जो कि आपस में ईर्षा और विरोध के सबब से पैदा होते हैं, गिर-फ़्तार और महा दुखी देखा और यह भी मुलाहिज़ा किया कि कुल्ल जीव सीधे रास्ते से बहुत दूर हो गये और निहायत भूल में जा पड़े, तब सत्तपुरुष राधास्वामी को दया आई और वे कृपा करके संत सतगुरू रूप धर कर संसार में प्रकट हुये और

सच्चे मत और मार्ग का भेद साफ़ साफ़ बानी और बचन में खोल कर कहा और जब कि उन्होंने देखा कि परमार्थ में ब्राह्मणों ने अपनी जीविका के कारण बहुत चालाकी की है और असल किताबों को सब की नज़र से छिपा दिया है, तब दया और मेहर करके कुछ भेद को भाषा बानी में आसान तौर से वर्णन किया और जीवों को उपदेश भी फ़रमाया। हरचन्द कि ब्राह्मणों का जाल ऐसा डाला हुआ नहीं था कि यकायक उपदेश संतों का जारी होवे, फिर भी आहिस्ता आहिस्ता बहुत से लोगों ने यानी जिन्होंने असल बात को विचार करके समझा और निर्णय किया, उन्होंने उपदेश को मान करके मत संतों का इख़्तियार किया, जैसे कि मत कबीर साहब और गुरू नानक और जगजीवन साहब और पलटू साहब और ग़रीबदास जी का जो कि इस अर्से सात सौ वर्ष में जा-ब-जा थोड़ा बहुत जारी हुआ॥

२९—पंडित और भेख हर एक संत के वक़्त में ज़ोर और शोर अपना दिखलाते रहे और जहाँ तक

हो सका, ऐसे जतन करते रहे कि जिसमें असल मत संतों का जो स्थान प्रणव तक वेद मत के साथ मुआफ़िक़त रखता है, जारी न होने पावे, क्योंकि उनको अपने रोज़गार जाते रहने का ख़ौफ़ पैदा हुआ और उन्होंने नादान और संसारी जीवों को अनेक तरह से भरमाया और भड़काया। इस सबब से ऐसी तरक़्क़ी संतों के मत की जैसी कि चाहिये नहीं हुई ॥

३०—यह सच है कि अमूमन कुल्ल जीव अधिकारी संत मत के नहीं हैं यानी जो जीव विषयी यानी भोगी हैं और उनको सच्ची चाह अपने मालिक के मिलने की या अपने जीव के उद्धार की नहीं है, उनकी अक़्ल इस मत के समझने में हैरान होती है और जो कि पुराने इष्ट पहले से बँधे हुए हैं, उनके छोड़ने और संतों का इष्ट बाँधने में उनको दिक़्क़त मालूम होती है और चूंकि पंडित और भेख उनको डराते और भरमाते हैं, इस सबब से उनका दृढ़ निश्चय इस मत पर नहीं आता है और संतों की यह मौज है कि वे जारी

होना आम इस मत का बिना निश्चय किये हुए और बिना समझे हुए भेद के, पसंद नहीं फ़रमाते हैं, किस वास्ते कि ऐसा अक़ीदा[१] फिर वही सूरत पैदा करेगा जैसी कि आज कल अवतार और देवताओं की पूजा में हो रही है यानी ज़ाहिर में लोग इष्ट राम और कृष्ण और महादेव और विष्णु और शक्ति और ब्रह्म का रखते हैं और हक़ीक़त में धन और स्त्री और औलाद और नामवरी के आशिक़ और आधीन रहते हैं। अपने इष्ट के हुकुम का कुछ ख़्याल भी नहीं और न कुछ उस का ख़ौफ़ है और न कुछ उसकी मुहब्बत यानी प्रीति उनके दिल में जगह रखती है। फिर ऐसे इष्ट से चाहे अवतार का होवे, चाहे देवता का होवे या संत सत्तपुरुष का या परम पुरुष पूरन धनी राधास्वामी का होवे, कुछ हासिल नहीं हो सकता है॥

३१—और जो इष्ट कि कला और शक्ति यानी करामात देखने से बाँधा गया है, उसके निश्चय का तो बिलकुल एतबार नहीं हो सकता

१—निश्चय।

है, क्योंकि जब तक कि दलील अक़्ली और मज़हबी से एक बात का निर्णय और तहक़ीक़ नहीं किया है, तब तक उसका निश्चय मज़बूत और क़ायम नहीं और यह हाल आज कल साफ़ नज़र आता है कि बहुत से लोग जो कि ज़ाहिर में हिन्दू या मुसलमान हैं, मगर बातिन यानी अन्तर में कोई मज़हब नहीं रखते। इसका सबब यही है कि उन्होंने अपने मत की किताबों को ग़ौर और ख़्याल से नहीं पढ़ा और न समझा और न किसी आमिल[1] से तहक़ीक़ किया और इस सबब से उन किताबों के बचनों पर, चाहे वे रोचक हैं या भयानक, उनको निश्चय और ऐतक़ाद जैसा चाहिये, वैसा नहीं आता है और न कोई अपनी उम्र भर में जैसे और कामों की तहक़ीक़ात पूरी करता है, ऐसे ही मज़हब की तहक़ीक़ात करता अपने अक़्ल और हवास के मुआफ़िक़, ख़्वाह औरों का हाल देख कर या अपने बुज़ुर्गों से सुन कर, हर एक शख़्स चाहे जिसमें अपना इष्ट बाँध लेता

१—अभ्यासी।

है और तहक़ीक़ात उसकी बिलकुल नहीं करता है। ऐसा इष्ट सिर्फ़ नाम के वास्ते है। इसी सबब से नाक़िस और बुरे कामों की दुनिया में रोज़-बरोज़ तरक़्क़ी है और जो कि किसी का ख़ौफ़ नहीं रहा और न कोई किसी के हाल को पूछता है, इस वास्ते लोग रोज़-बरोज़ नीचे के दरजों की तरफ़ झुकते चले जाते हैं॥

३२—पंडित और सन्यासी और साधू और मौलवी जो अगुआ और चलानेवाले वेद मत और क़ुरान के थे, वह इस वक़्त में आप इस दौलत से बे-नसीब हैं और आप सब से ज़्यादा दुनिया के भोग बिलास और लोभ और मान बड़ाई की चाह में फँस गये हैं। फिर अब कौन है कि जो इन सब की यानी पंडित और भेष और गृहस्थियों की ग़लती ज़ाहिर करके इनको सीधा रास्ता बतलावे? यह काम सिर्फ़ संतों का है और जो कोई इस वक़्त में उनके बचनों को अच्छी तरह समझ करके उनका अभ्यास यानी साधना करेगा, बे-शक वह मन के फ़रेब और माया के जाल से बच

जावेगा, नहीं तो हर एक को अपने अपने काम का इख़्तियार हासिल है, इस मुआमले में ज़ोर और ज़बरदस्ती नहीं हो सकती है ॥

३३—संतों की दया में कुछ शक नहीं कि उन्होंने आज कल के जीवों के वास्ते थोड़े से में खुलासा सच्चे मत और मार्ग का और सीधा और सहज रास्ता मालिक की प्राप्ति का प्रगट किया यानी अगले वक्त में अभ्यासी मूल चक्र यानी गुदा चक्र से अभ्यास शुरू करते थे और बड़ी मुश्किल के साथ बहुत अर्से में कोई छठे चक्र तक और कोई ख़ास ख़ास सहसदलकँवल या त्रिकुटी तक पहुँच कर जोगी या जोगेश्वर गति हासिल करते थे। अब संतों ने शुरू अभ्यास सहसदलकँवल से कराया और बजाय अष्टांग योग यानी प्राणायाम के जिसमें दम रोकना पड़ता है, सहज योग यानी सुरत शब्द का मार्ग जारी किया। इस अभ्यास को हर कोई कर सकता है और नफ़ा इसका प्राणायाम और दूसरे अभ्यासों से मिस्ल[1] मुद्रा और हठ योग वग़ैरा के, बहुत ज़्यादा है। बल्कि

१—जैसे।

इन सब अभ्यासों का फल सुरत शब्द मार्गी को उसके रास्ते में हासिल होता चला जाता है। इस का मुफ़स्सिल हाल आगे वर्णन किया जावेगा॥

३४—अब इतना विचारना चाहिये कि जो लोग नाभि चक्र और हृदय चक्र में ध्यान लगाते हैं, वह स्थान असली से किस क़दर दूर हैं यानी जो वह स्थान फ़तह भी हो जावें तो जो कुछ कि उनको हासिल होगा, वह अक्स यानी छाया स्थान असली की होगी। सो फ़तह होना उन स्थानों का यानी हृदय कँवल और नाभि कँवल का भी इस वक़्त में बहुत मुश्किल हो गया है, क्योंकि प्राणायाम या मुद्रा का अभ्यास किसी से बन नहीं पड़ता है और जबकि इनको भेद स्थान उल्वी का बिल्कुल मालूम नहीं हुआ और दर्जात सिफ़ली[1] को ही उन्होंने दर्जात उलवी[2] और सिद्धान्त समझा, फिर वह किस तरह धुर स्थान पर पहुँच सकते हैं और कुल्ल-मालिक का पद उनको कब हासिल हो सकता है? इसी वास्ते संत जो कि

१— नीचे। २— ऊँचे।

सब से ऊँचे और महा निर्मल और पाक स्थान सत्तनाम और राधास्वामी पर पहुँचे, फ़रमाते हैं कि दुनिया के लोग सब भूल और भरम में पड़े हैं। मालिक उनका कहीं है और वह कहीं तलाश करते हैं। सो यह तो हाल उन लोगों का है जो कि थोड़ी बहुत अंतरमुख पूजा और सेवा और ध्यान करते हैं या षट चक्र के बींधने में लगे हैं और जो बाहरमुखी हैं यानी तीर्थ और व्रत और मूर्ति पूजा में अटके हैं, वे तो किसी गिनती ही में नहीं हैं यानी बिल्कुल ग़फ़लत और अन्धेरे में पड़े हैं और जो उसी काम में लगे रहेंगे और खोज असल मालिक का नहीं करेंगे, तो सच्चे मालिक का पता और दर्शन हरगिज़ हरगिज़ नहीं पावेंगे॥

३५—षट चक्र यानी गुदा चक्र से सहसदल-कँवल के नीचे तक छः चक्र गिनती में हैं। बड़े अफ़सोस की बात है कि जो मालिक और करता ऐसा बड़ा और मेहरबान और दयाल है कि जिसने सब रचना पैदा की और मनुष्य को उत्तम

दी और तरह तरह और क़िस्म क़िस्म की चीज़ें और सूरतें पैदा कीं, उस को लोग पत्थर या धात की मूरत में या पानी जैसे गंगा जमुना नर्वदा में या दरख़्त जैसे तुलसी या पीपल में या जानवरों जैसे गाय और हनुमान और नाग में थाप कर पूजते और ढूंढ़ते हैं। इन सब से तो प्रत्यच्छ सूरज और चाँद और इन्सान ख़ुद आप ही बड़ा है, तो मालिक की पैदा की हुई चीज़ों को ख़ुदा और मालिक समझ कर पूजना और असल मालिक का खोज न करना, बल्कि अपने हाथ से बनाई हुई चीज़ों को आप ही पूजना किस क़दर ग़फ़लत और नादानी और बे-परवाही ज़ाहिर करना है कि उत्तम नर देही पाकर उसको मुफ़्त बरबाद करके अधम गति को पाना और चौरासी की नीच जोनि और नर्कों में जाना? इससे बड़ा गुनाह और पाप जीव की निस्बत और क्या होगा? अगर सच्चे मालिक की ख़बर होती तो उसका कुछ ख़ौफ़ और इश्क़[1]

१—प्रेम।

दिल में पैदा होता और उन चीज़ों में कि जो बनाई हुई आदमी के हाथ की हैं, कैसे डर या प्रीति पैदा हो सकती है?

३६—जो सतगुरु पूरे हैं यानी सच्चे मालिक से मिले हुये हैं या सच्चे साध और फ़क़ीर हैं, जो वे मिल जावें और उनकी दया हो जावे यानी उनकी दृष्टि मेहर की इस जीव पर पड़े तो इस जीव का काम सहज में बनना शुरू हो जावे। मगर एक दिक़्क़त इसमें भी है कि यह जीव उनको मिस्ल और खुद-मतलबियों के ठग और लोभी और दग़ाबाज़ समझता है और इस सबब से उनकी सरन क़बूल नहीं करता है और जो शख़्स कि हक़ीक़त में भोगी और रागी हैं और दुनिया की ग़ुलामी कर रहे हैं, वे ऐसा मौक़ा देख कर यानी जीवों को मूरख और भूले हुये जान कर आप गुरु बन बैठे हैं और रोज़गार अपना खूब जारी किया है और जिस क़दर उनसे हो सका, इन ग़रीब और भूले हुये जीवों को लालच, हासिल कराने धन और स्त्री और पुत्र और तन्दुरुस्ती

और नामवरी का, देके कि जिसकी चाह असली इनके मन में भी लगी हुई थी, धोखे और भरम में डाला यानी पत्थर और पानी और दरख़्त और जानवर पुजवा कर अपना मतलब किया और तीर्थों और व्रतों और होम और यज्ञ में भरमाया और पुकार कर सुनाया कि एक व्रत और एक तीर्थ ही करने में मोक्ष मिलेगी। यह ख़्याल न किया कि जो अपना रोज़गार चलाया था तो कुछ मुज़ायका नहीं, पर इन बेचारे ग़ाफ़िलों को सीधा रास्ता तो बतलाते कि जिसमें इनका भी कुछ काम बनता। सो इस रास्ते और जुगत की उनको आप ही ख़बर नहीं, पढ़ने पढ़ाने और सुनाने में सब उस्ताद और होशियार हैं। श्री कृष्ण महाराज ने जो ऊधोजी को उपदेश किया, उससे साफ़ ज़ाहिर है कि हरचन्द वह महाराज के संग और सेवा में बरसों रहा, पर यह न हो सका कि उसको परम पद में अपने साथ ले जाते। सो यही फ़र्माया कि पहिले योग अभ्यास करो, तब अधिकारी परम पद के होगे। ख़्याल करना चाहिये कि जिस वक़्त सच्चे कृष्ण महाराज की सेवा

और टहल और संग में ऊधो जी से प्रेमी क़ाबिल पहुँचने परम पद के बिना अभ्यास नहीं हुये, तो जो लोग कि कृष्ण महाराज के स्वरूप की नक़ल पत्थर या धात की बना कर उसकी सेवा और टहल में अपना वक़्त खर्च कर रहे हैं और सहज योग के अभ्यास और सतगुरु भक्ति से बिलकुल ग़ाफ़िल हैं, वह कैसे परम पद को पहुँचेंगे और इस पर भी यह हाल है कि गुसाईं और पुजारी से लेकर यात्रियों और पूजने वालों तक कोई बिरला सच्चे दिल से निश्चय मूरत का दुरुस्त रखता है, नहीं तो दुनिया की मूरत को यानी माया और उसके पदार्थों को सब लोग पूजते हैं और पुजवाते हैं ॥

३७—यही हाल तीर्थों का भी हो गया। जोकि अगले महात्माओं ने वास्ते सतसंग और दान पुण्य के और एकान्त स्थान में घर से दूर चन्द रोज़ विश्राम करने के लिये मुक़र्रर किये थे, वह अब मेले और तमाशे हो गये। हर एक वास्ते अपने मन के आनन्द और विलास और दोस्तों की मुला-

क़ात और सैर और तमाशे और ख़रीदने तोहफ़े और असबाब के जाता है। भजन बन्दगी का कुछ ज़िक्र भी नहीं है। अब ऐसे लोगों को यह समझाया जाता है कि ज़रा ग़ौर करके देखो और अक़्ल से विचारो कि ऐसी सूरत में तीर्थ कब मुक्ति के दाता हो सकते हैं ? व्रत का भी थोड़ा बहुत यही हाल है कि बतौर त्यौहार होगये। अगले महात्माओं ने तो वास्ते इन्द्रिय और मन के दमन करने और जागरण और पूजन और सतसंग करने के मुक़र्रर किया था। अब यह दिन वास्ते खेलने शतरंज और चौपड़ और गंजफ़ा और सोने रात और दिन और खाने अच्छे अच्छे और क़िस्म क़िस्म के मेवे और शीरीनी वग़ैरा के होगये ॥

३८–जबकि मूरत पूजा में जो कि वास्ते मज़बूत करने ध्यान और एकाग्र करने चित्त के अंतर में मुक़र्रर हुई थी, यह ख़राबी हुई कि सिर्फ़ नाममात्र के वास्ते आना जाना मन्दिर का और सिर्फ़ हार फूल और जल चढ़ाना मूरत पर रह गया और पुजारियों ने उसको अपना रोज़गार समझ कर

मन्दिर में खेल और कूद और नाच व रंग और तमाशे और आरायश जारी किये और सतसंग जो कि मुख्य था, उसका कुछ भी ख़्याल नहीं किया और वास्ते खुशी ख़ातिर पूजा करने वालों के नये नये तमाशे और आरायश मन्दिरों में कराने लगे और तीर्थ व्रत वग़ैरा में कारख़ाना बिलकुल उलटा होगया यहाँ तक कि जो आज कल कोई तीर्थ को न जावे और अपने घर पर भी नाम मालिक का न लेवे तो वह बहुत पापों और कुकरमों से बच रहता है और उनसे अच्छा है जो कि तीर्थ करते हैं और तीर्थ के स्थान पर अच्छे अच्छे पदार्थ ताक़त के खाकर तमाशे देखते हैं और बे-फ़ायदे कामों में वक़्त को ख़राब करते हैं और बड़ा अहंकार अपने दिल में तीर्थ करने का रखते हैं। इस वास्ते यह हालत आज कल के समय और मनुष्यों की देख कर संतों को अति कर दया आई। हरचन्द कि लोगों को सच्चा परमार्थी और खोजी बहुत कम देखा, फिर भी अपनी दया और मेहर से बचन और बानी के वसीले से सब को उपदेश परम पद का किया और जिस जिस

ने उनके वक़्त में उनके बचन को चित्त से सुना और समझा और उस पर निश्चय किया और अभ्यास में लग गया, उसको परम पद में पहुँचाया और बाक़ी सब लोगों के वास्ते बानी कथ कर रख गये कि जो कोई उस को पढ़ कर समझेंगे, वह भी क़दर संतों की जान कर वास्ते प्राप्ति असल मालिक के, खोज संत सतगुरू पूरे का करेंगे और कर्म और भर्म यानी पूजा मूरत और पानी और जानवर और दरख़्त और देवताओं और अवतारों से हट कर एक सच्चे मालिक के चरनों में जो कि सब का करतार और सबके परे है, दृढ़ प्रीति और प्रतीत करके उसके चरनों का दर्शन हासिल करेंगे ॥

३९—थोड़े से नाम पूरे और सच्चे संतों के और सच्चे साध और फ़क़ीरों के जो पिछले सात सौ वर्ष में प्रकट हुये, यहाँ लिखे जाते हैं। कबीर साहब, तुलसी साहब, जगजीवन साहब, ग़रीबदासजी, पलटू साहब, गुरू नानक, दादूजी, तुलसीदासजी, नाभाजी, स्वामी हरिदासजी, सूरदासजी, और रैदास जी और मुसलमानों में शम्स तबरेज़, मौलवी

रूम, हाफ़िज़, सरमद, मुजद्दिद अलिफ़ सानी इन साहबों के बचन बानी देखने से हाल उनकी पहुँच और स्थान का मालूम हो सकता है ॥

४०—संतों और फ़क़ीरों की पहिचान यही है कि वे हमेशा इष्ट और अक़ीदा सच्चे मालिक का अन्तर में दृढ़ करावेंगे और बाहर मूरत और तीर्थ और पोथी और किताब में नहीं भटकावेंगे और न देवता और अवतार और पैग़म्बरों की पूजा में लगावेंगे और अभ्यास सहज जोग सुरत शब्द का कि इसके सिवाय दूसरा रास्ता सच्चे मालिक से मिलने का नहीं है, बतलावेंगे और अपने वक़्त के पूरे सतगुरू की सेवा और प्रीति और प्रतीत का उपदेश करेंगे और स्त्री और पुत्र और धन और मान बड़ाई की आशक्ति रोज़-बरोज़ कम करा के खोजी और अनुरागी के हृदय में सच्चे मालिक की प्रीति और प्रेम को बढ़ावेंगे और वे आप भी हर वक़्त भजन और ध्यान में रहते हैं और अपने सेवकों को भी इसी काम में लगाते हैं और पिछले वक़्तों के धर्म और कर्म और भर्म और शक

और शुबहे और इष्ट दूसरों का, सिवाय सच्चे मालिक कुल्ल के, दूर करा देंगे और आहिस्ता आहिस्ता सब बन्धनों, अंतरी और बाहरी, की असल को काट कर जीते जी यानी इसी देह में मालिक के चरनों में पहुँचा देंगे। पर शर्त यह है कि उनके सतसंग और सेवा से हट न जावे और रोज़-बरोज़ उनके चरनों में प्रीति और प्रतीत बढ़ाता जावे और जैसे वह फ़रमावें वैसे अभ्यास करता रहे॥

४१—बंधन मुवाफ़िक़ बचन वशिष्ठ जी के आठ तरह के हैं। पहिला बंधन इज़्ज़त और हुरमत ख़ानदान यानी वंश का, दूसरा इज़्ज़त और हुरमत ज़ात का, तीसरा इज़्ज़त और हुरमत ओहदे यानी काम और हुकूमत का, चौथा लज्जा और ख़ौफ़ नेकनामी और बदनामी जगत का, पाँचवाँ मुहब्बत स्त्री और पुत्र और धन और माल का, छठा पक्षपात करना झूठे निश्चय और ओछे मत का, सातवाँ आसा और तृष्णा और जगत के भोग बिलासों की चाह, आठवाँ अहंकार॥

४२—जिस महात्मा के सतसंग और सेवा

से यह बंधन रोज़-बरोज़ ढीले और कम जावें और प्रीति और प्रतीत सच्चे मालिक के चरनों में दिन दिन बढ़ती जावे तो यक़ीन करना चाहिये कि वे रफ़्ता रफ़्ता सब बंधनों से छुटा कर निज पद में पहुँचा देंगे। सिवाय इसके और कोई माक़ूल पहिचान संत और साध की नहीं है और जो कोई यह इरादा करे कि संतों का हाल उनके लच्छण और चाल चलन को देख कर ग्रन्थों की लिखी हुई बातों से मिलावे या उनसे करामात चाहे या उनकी और किसी तरह से परीच्छा और इम्तिहान करे तो यह बड़ी भारी ग़लती और नादानी है, किस वास्ते कि इस तुच्छ जीव की क्या ताक़त है कि अपनी अल्प बुद्धि और ओछी अक़्ल और समझ से उनके ज्ञान और चाल ढाल को परख सके। इसको तो सिर्फ़ अपने मतलब की बात पहिले देखनी चाहिये यानी उनके दर्शन और बचन से जिस क़दर इसके दिल में शौक़ और अनुराग होवे, उनकी पहिचान करे और सच्ची दीनता और ग़रीबी से उनके सामने जावे और

अहंकार और चतुराई से उनके साथ बर्ताव न करे और उनके तौर और तरीक़ और व्यवहार में अपनी ओछी समझ को दख़ल न देवे और उस पर अपनी समझ न लगावे, किस वास्ते कि संत जो काम करते हैं, चाहे ज़ाहिर में वह लड़कों का खेल ही मालूम होवे, पर वह कभी मसलहत से ख़ाली न होगा और ज़रूर उसमें फ़ायदा और लाभ सब जीवों का मंज़ूर होगा। जीव की अक़्ल वहाँ तक पहुँच नहीं सकती है कि जहाँ उसको नफ़े और नुक़सान की समझ आवे। इस सबब से बहुतेरे जीव अपनी नादानी और कम-फ़हमी से उनकी चाल पर अभाव लाकर मुफ़्त अपना नुक़सान और हर्ज करते हैं यानी उनकी संगत से दूर हो जाते हैं॥

४३—संत नहीं चाहते कि बहुत सी जमाअत और भीड़भाड़ दुनियादारों की उनके दरबार में होवे। वे सिर्फ़ ऐसे शख़्सों को चाहते हैं जो हक़ीक़त में शौक़ हासिल करने परम पद का रखते हैं और जिस की चाह दुनिया की है उनकी

सोहबत से उन को निहायत नफ़रत है। इसी सबब से वे कोई शक्ति या क़ुदरत ज़ाहिरी अक्सर नहीं दिखलाते हैं कि उसको देख कर संसारी जीव बहुत भाव लावेंगे और संतों के और उनके सच्चे सेवकों के सतसंग और अभ्यास में ख़लल डालेंगे। जो कोई उनके बचन और ज्ञान को सुन कर निश्चय लाया, उसको अलबत्ता करामात अंतरी यानी नूर और प्रकाश सच्चे मालिक के दर्शन और जमाल का दिखलाते हैं और कुछ उसके कारोबार में हमेशा तवज्जह अंतरी फ़रमाते रहते हैं, तब वह उनकी करामात को अच्छी तरह देखता है और समझता है और फिर यक़ीन भी उस का मज़बूत होता जाता है और उनके चरणों में प्रीति भी रोज़-बरोज़ बढ़ती जाती है॥

४४—और जो संत सतगुरू आम तौर पर सतसंग जारी फ़रमाते हैं तो उनके दरबार में अक्सर फ़क़ीर और मोहताज भी आते जाते हैं और उनका आना जाना इस वास्ते मुनासिब और जायज़ रक्खा है कि जो प्रेमी सेवक धन वग़ैरा की सेवा

करें यानी दुनिया के पदार्थ और धन उनकी भेंट करें तो वे उसको ग़रीबों और मोहताजों को ख़ैरात कर देते हैं क्योंकि वे आप इन पदार्थों को अपने पास नहीं रखते हैं ॥

४५—जहाँ संत सतगुरु मौज से सतसंग जारी फ़रमाते हैं तो जान बूझ कर दो चार बातें चाल ढाल में ऐसी प्रगट करते हैं कि जिन से दुनियादार नाराज़ हो जावें या तान और शिकायत करने लगें ताकि वे और और अहंकारी लोग सुन कर उनके दरबार में न आवें और सतसंग में ख़लल न डालें। उनके दरबार में कोई चौकी पहरा नहीं रहता कि बुरे और भले की पहिचान करके रोक टोक करें। इस वास्ते उनकी निन्दा और शिकायत जो दुनियादार और अहंकारी लोग करें, वही काम चौकीदारी का देती है यानी संसारियों और अहंकारियों को दूर रखती है। ऐसे शख़्स शर्म और हया और ख़ौफ़ और तान दुनियादारों से वहाँ नहीं जाते और सिर्फ़ ऐसे शख़्स जो सच्ची चाह वाले यानी खोजी सच्चे और पूरे परमार्थ के

हैं, वही लोग दुनियादारों का डर और लाज छोड़ कर वहाँ पहुँचते हैं। सिवाय इसके यह निंदा एक तरह की परीक्षा भी मुमोक्षु यानी शौक़ीन के वास्ते है यानी फ़ौरन मालूम हो जाता है कि वह शख़्स सच्चा परमार्थी है या नहीं। जो सच्चा खोजी होगा तो वह कभी बदनामी और नेकनामी दुनिया और मूरखों की तान से ख़ौफ़ न करके ज़रूर वास्ते हासिल करने अपने असली मतलब यानी परमार्थ के हाज़िर होगा और जो झूठा है वह वहाँ नहीं पहुँचेगा॥

४६—देखो दुनियादारों को जो वे दुनिया को सच्चे दिल से चाहते हैं, किसी स्थान पर अपने मतलब हासिल करने के वास्ते जाने से नहीं रुकते और न ऐसी जगह दीनता करने से उनको शर्म आती है, जैसे ब्राह्मण ग़ैर-क़ौमों की सेवा करते हैं और औलाद की बीमारी दूर कराने को भंगी तक के दरवाज़े पर जाने से परहेज़ नहीं करते और अपने इष्ट और मज़हब का ख़्याल छोड़ कर बहुतेरे ऊँची ज़ात वाले शेख़ सद्दो और सैयदों की क़बरों को

और अनेक मलीन देवताओं को और भूत पलीत को पूजते हैं। जब दुनियादार अपने दुनिया के काम के वास्ते अपने धर्म और कर्म को छोड़ देते हैं और परलोक के नुक़सान से नहीं डरते तो मालिक के चाहने वालों की सच्ची चाह कैसे साबित होवे जो वे ज़रा सी निन्दा और मूरखों की तान का ख़्याल और ख़ौफ़ करके संतों के दरबार में हाज़िर नहीं होते ? इससे मालूम हुआ कि उनको सच्ची चाह नहीं है और दुनिया के कारोबार में इस क़दर दुख नहीं पाया, उसको इस क़दर अपना दुश्मन नहीं समझा है कि इलाज उसके दूर करने का करें और इस क़दर प्यास मालिक के दर्शनों की नहीं लगी है कि लोक लाज और दुनियादारों की तान को ताक़ पर रख दें, तो ऐसे शख़्स संतों के सतसंग के लायक़ नहीं हैं, क्योंकि उनको पूरी ग़र्ज़ नहीं है कि संतों के हुज़ूर में दीनता के साथ पेश आवें और अपने दुख की दवा लेवें।

४७—और मालूम होवे कि तान और तंज़ और निन्दा संतों के सेवकों को भी पक्का और

दुरुस्त करती है। जो निन्दा और बदनामी न होवे तो वह जैसे के तैसे कच्चे रहेंगे। निन्दा और बदनामी निशान सच्चे प्रेम का है और सिवाय आशिक़ों यानी सच्चे भक्तों के दूसरे की ताक़त नहीं कि दुनिया की बदनामी से बे-ख़ौफ़ होवें। फ़ारसी में कहा है :—

मलामत शहनये बाज़ारे इश्क़स्त।
मलामत सैक़ले ज़ंगारे इश्क़स्त॥

यानी निंदा और हँसी प्रेम के बाज़ार की कोतवाल हैं और मैल और काई की सफ़ाई करने वाली हैं। जो गुरू कि दुनिया के चाहने वाले हैं, वह दुनिया और दुनियादारों को निहायत दोस्त रखते हैं और उनको प्यार करते हैं और उनकी सब प्रकार से ख़ातिरदारी करते हैं और तरक़्क़ी और हुरमत चाहते हैं और बड़ा ख़्याल इस बात का रखते हैं कि उनके सेवक नाराज़ न हो जावें ताकि उनके रोज़गार और जीविका में ख़लल न आवे। बर-ख़िलाफ़ इसके संत जो कि सच्चे और पूरे आशिक़ मालिक-कुल्ल के हैं, ख़्वाहिशमंद इस बात के रहते हैं कि दुनियादार उनके सतसंग को न छेड़ें और अपना साया

उनके सेवकों पर न डालें। इस वास्ते ज़रूर मलामत और निंदा को अज़ीज़ रखते हैं कि वही काम चौकीदार का देती है और ऐसे लोगों को उनके दरबार से हटाये रखती है॥

४८—और मालूम होवे कि संतों का यह दस्तूर है कि जब कोई उनके पास आवे तो उसको उपदेश या उसके सामने चर्चा सत्य वस्तु यानी सत्त पुरुष राधास्वामी की करते हैं और बाक़ी औरों को नाशमान और ओछा कहते हैं। इसी बात को *नादान और मूरख लोग निन्दा और हजो देवताओं* और अवतारों और पैग़म्बरों की समझ कर उनको निन्दक कहते हैं और यह नहीं ख़्याल करते कि जो उन्होंने ब्रह्मा विष्णु और महादेव और देवताओं और अवतारों और पैग़म्बरों को ओछा बतलाया तो फिर तारीफ़ किसकी की और सब से बड़ा किसको ठहराया। जो उन्होंने तारीफ़ सत्तपुरुष और परम पुरुष पूरन धनी राधास्वामी की की तो यह बात मानने योग्य है, क्योंकि जो सबसे बड़ा और मालिक कुल्ल का है, उसकी तारीफ़ करना

और उसके चरणों में प्रतीत और ऐतक़ाद दिलाना और उसकी सेवा पूजा के वास्ते उपदेश करना ज़रूरी काम है और निहायत मुनासिब, क्योंकि बग़ैर इसके जीव का उद्धार मुमकिन नहीं। फिर समझना चाहिये कि किस क़दर शर्म की बात है कि कुल्ल-मालिक की बड़ाई को सुन कर नाराज़ होना और अपनी मूरखता से असल मतलब को न समझ कर बर-ख़िलाफ़ संतों के बचन के क़दर करने के उसको बुरा समझना और संतों को निन्दक ठहराना॥

४६—वेद और शास्त्र, भागवत और पुराण वग़ैरा ने अवधि यानी उम्र ब्रह्मा और विष्णु और शिव और देवताओं की लिखी है और अवतार भी जो संसार में आये, वह भी संसार को छोड़ कर चले गये। तब उन की देह रूप का और ब्रह्मा विष्णु और शिव वग़ैरा की देह का नाशमान होना साफ़ ज़ाहिर है और जब यह रूप नाशमान साबित हुये तो उनके इस स्वरूप की नक़ल को अविनाशी समझना या उसका इष्ट या निश्चय

बाँधना, किस तरह दुरुस्त हो सकता है ? अगर उनके निज रूप का भेद लेकर उसका ध्यान करते और उसमें इष्ट बाँधते तो भी कुछ थोड़ा सा फ़ायदा होता और नक़ली स्वरूप में तो कुछ भी हासिल नहीं। इसमें साफ़ ग़लती अवाम की पाई जाती है और जो संत उसको दूर करना चाहते हैं तो लोग अपने अहंकार और मूरखता से उनको निन्दक कहते हैं, ख़ास कर रोज़गारी लोग मिस्ल पंडित और भेष के, ज़रूर बुराई करने को तैयार होते हैं॥

५०—जो कोई यह कहे कि हम अवतारों के उस रूप और पद की उपासना करते हैं जो असल रूप है यानी जहाँ से अवतार प्रगट हुये हैं तो यह कहना उनका दुरुस्त है, पर इस क़दर फिर भी विचार करना चाहिये कि जो उस रूप या पद की पूजा और इष्ट इख़्तियार किया तो इससे उस पद की पूजा और इष्ट क्यों नहीं इख़्तियार करते जहाँ से अवतारों का असली पद पैदा हुआ ? मेहनत और तरीक़ा दोनों पद की पूजा

का बराबर है, पर उनके फल और फ़ायदे में भेद है। इस वास्ते सबसे बड़े और ऊँचे पद की पूजा और इष्ट मुनासिब है। और यही संतों का इष्ट है और इसी को संत उपदेश करते हैं। इस उपदेश से यह ग़रज़ नहीं कि और स्थानों के मालिक से विरोध और ईर्षा इख़्तियार करना चाहिये, बल्कि सत्तपुरुष राधास्वामी के इष्ट वाले को भी धारना हर एक पद की जो कि उसके रास्ते में पड़ेंगे, करनी पड़ेगी। बिना इसके वह स्थान फ़तह न होवेंगे। लेकिन इस राह में चलने से पहिले इष्ट अपना धुर और निज स्थान का दुरुस्त करना चाहिये और हर एक स्थान के हाल और कैफ़ियत को ब-ख़ूबी समझ लेना चाहिये, किस वास्ते कि दुनिया में भटकाने वाले और भरमाने वाले बहुत हैं और ख़ुदा और परमेश्वर और परमात्मा और ब्रह्म और पार-ब्रह्म और शुद्ध ब्रह्म और सत्तनाम कहने वाले भी बहुत हैं, पर असल में इल्मी ज्ञान भी इन पदों का जैसा कि चाहिये और उन मुक़ामात का जो कि इनके रास्ते में पड़ते हैं,

तफ़सीलवार नहीं रखते। ऐसे शख़्स हमेशा धोखा खाते हैं और मालूम नहीं होता कि वे किस स्थान के धनी यानी मालिक को ब्रह्म और ख़ुदा और सत्तनाम कहते हैं। इस वास्ते संतों ने दया करके मुमोक्षु को पहिले पहिचान स्थानों की कराई और फिर इष्ट सत्त पुरुष राधास्वामी का दृढ़ कराया जो कि सब से ऊँचे और आख़िरी पद हैं और फिर अभ्यास रास्ते पर चलने का बतलाया। इस तौर से अभ्यासी मंज़िल तक पहुँच सकता है और सब स्थानों की कैफ़ियत और हक़ीक़त भी जान सकता है और अपने पूरे और सच्चे मालिक की ठीक ठीक समझ लेकर और जिस क़दर कि पहिचान उसकी यहाँ हो सकती है, करके, अभ्यास शुरू कर सकता है। और जो भेद नहीं मिला और पहिचान और समझ नहीं आई, तो मालिक के चरणों में न तो सच्ची प्रीति पैदा होगी और न उसकी रोज़-बरोज़ तरक़्क़ी होगी और न धुर तक पहुँचने की ताक़त होगी। कहीं न कहीं रास्ते में किसी मुक़ाम पर धोखा खाकर ठहर जावेगा॥

५१—अवतारों और देवताओं के मालिक न होने की निस्बत तो इस क़दर कहना ही काफ़ी है कि ये बाद रचना के कोई द्वापर और कोई त्रेता युग में प्रगट हुये। तब ग़ौर करना चाहिये कि इन के प्रगट होने से पहले यानी सत युग में किसकी पूजा होती थी और किस के वसीले से लोग परम पद हासिल करते थे? सो उस वक्त में उपासना ख़ास हिरण्यगर्भ कि जिसको प्रणव यानी ओंकार कहते हैं, जारी थी और उसी का ज़िक्र वेद के उपनिषदों में लिखा है। फिर क्या वजह कि उस उपासना को छोड़ कर इस वक्त में लोग मूरत और तीरथ में उलझ गये? गंगा जी भी भगीरथ के समय से जारी हुईं। पहिले नहीं थीं। तो उस समय में कौनसा तीरथ क़ायम था? ग़रज़ यह कि यह जितनी पूजा अब इस समय में जारी हैं, नई प्रगट की हुई द्वापर त्रेता और कलियुग की हैं। असल पूजा मालिक कुल्ल की है जो कि संतों के मत के मुआफ़िक़ सब इख़्तियार कर सकते हैं। पर अवतार और पैग़म्बरों की

पूजा उसी देश में जारी होगी, जहाँ वे पैदा हुये, और दूसरी जगह उनको न कोई जानता है और न मानता है ॥

५२—और जो कि अवतारों और पैग़म्बरों ने जो अपने वक़्त में अपने असल पद को जहाँ से वे आये थे, मालिक क़रार दिया या ख़ुद आपको मालिक का भेजा हुआ या उसका प्यारा बतलाया और लोगों से अपने तईं पुजवाया या अपना इष्ट बँधवाया तो यह बात ग़लत न थी। पर इस सूरत में सिर्फ़ उन्हीं लोगों का गुज़ारा हुआ जो कि उनके वक़्त में मौजूद थे। उनको अपने पद की मुक्ति उन्होंने बख़्शी। पर जो लोग कि उनके बाद उनके मत में आये, उन्होंने सिर्फ़ टेक उन के नाम की बाँध ली और उनके तन मन की हालत नहीं बदली तो इस टेक से कभी मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। यही हाल संतों के इष्टवालों का भी समझना चाहिये कि जो जो शख़्स कि संतों के रू-ब-रू आये और उनके चरनों में सेवा और भक्ति की और उनसे उपदेश लिया,

वह बेशक अधिकारी मुक्ति के हुये और जो पीछे हुये और उन्होंने सिर्फ़ इष्ट या टेक संतों की बाँध ली और अपने वक़्त का पूरा गुरु यानी संत या कि पूरा साध न खोजा और जो मार्ग यानी रास्ता और तरीक़ा अभ्यास का कि संतों ने मुक़र्रर फ़रमाया है, उस पर न चले तो वह भी और मत वालों की तरह से अधिकारी मुक्ति के नहीं हो सकते। जैसा कि और लोग मूरत या तीरथ और पोथी और ग्रन्थों की पूजा में लगे हैं, ऐसे ही जो संतों के घर के जीव भी पूजा समाध और झंडा और ग्रन्थ वग़ैरा में लग गये और संतों के निज स्वरूप और उनके पद का भेद और हाल रास्ते का और तरीक़ा अभ्यास का मालूम नहीं हुआ और बाहरमुखियों की तरह सिर्फ़ समाध और ग्रन्थ वग़ैरा की टेक बाँध ली तो वे भी और मतों के बाहरमुखी पूजा करने वालों की तरह करम और भरम में अटक गये और मुक्ति की प्राप्ति उनको भी नहीं हुई। असल संत पंथी वह है कि जो उनके हुक्म के मुआफ़िक़ अभ्यास करे

और रास्ते की मंज़िलें पार करके स्थान सत्त पुरुष राधास्वामी में पहुँचे या चलना उस रास्ते पर शुरू कर दे तो वह बेशक एक दिन सच्ची मुक्ति को प्राप्त हो जावेगा। खुलासा यह है कि जो पिछले महात्माओं या अवतारों या पैग़म्बरों या देवताओं का सिर्फ़ इष्ट धारन करने को उनका मत समझेगा, उसका कभी छुटकारा नहीं होगा॥

५३—जो सच्चा खोजी है, उसको चाहिये कि अपने वक़्त के पूरे संत या पूरे साध का खोज करे यानी पूरे सतगुरु जहाँ मिलें, उनका संग करे और उन्हीं में सब देवता और अवतार और महात्मा और संत और साध, पिछलों को, मौजूद समझ कर तन मन से सेवा और प्रीति और प्रतीत करके अपना काम उनसे बनवावे, जैसे कि पिछले बादशाह चाहे बड़े मुंसिफ़ और दाता हुये पर उनके हाल सुनने से या उनके नाम लेने से हमको दौलत और हुकूमत और ओहदा नहीं मिल सकता है। जो हमको उसकी चाह है तो चाहिये कि अपने वक़्त के बादशाह से मिलें तब अलबत्ता

काम हमारा बनेगा। नहीं तो ख़राबी और हैरानी के सिवाय और कुछ हासिल नहीं होगा। मौलवी रूम कहते हैं :—

चूंकि करदी ज़ाते मुर्शिद रा क़बूल
हम ख़ुदा दर ज़ातश आमद हम रसूल

यानी पूरे सतगुरु और मालिक में भेद नहीं है और मुरशिद में और सतगुरु में मालिक और अवतार सब आगये यानी जो मालिक से मिलना चाहते हो तो फ़ुक़रा यानी संतों में सतगुरु का खोज करना चाहिये। और यह ज़रूर नहीं कि संत कपड़े रँगे हुये को कहते होवें। संत उनको कहते हैं जो सच्चे मालिक से सत्तलोक में पहुँच कर मिल गये, चाहे वह गृहस्थ में होवें या विरक्त, चाहे ब्राह्मण होवें या और कोई ज़ात में होवें। मालिक का दीदार दुनिया में और कहीं नहीं है, या तो अपने अंतर में या पूरे साध और पूरे संत में जो कि कुल्ल जगत के क़ुदरती गुरु हैं और खोजने वालों को इन्हीं दो स्थान पर दर्शन मालिक का प्राप्त होगा और मूरत तीरथ ब्रत और चार धाम और मन्दिरों में कहीं पता और

निशान उस का नहीं मिलेगा। मौलवी रूम कहते हैं:—

मस्जिदे हस्त अन्दरूने औलिया
सिजदागाहे जुमला हस्त आँजा ख़ुदा

यानी महात्माओं के अंतर में मन्दिर और मस्जिद है और वहीं जो कोई मालिक और ख़ुदा को सिजदा[१] करना चाहे, मत्था टेके। और यह भी कहा है कि

गुफ़्त पैग़म्बर कि हक़ फ़रमूदा अस्त
मन न गुंजम हेच दर बाला वो पस्त
दर दिले मोमिन बिगुंजम ईं अजब
गर मरा ख़्वाही अज़ाँ दिलहा तलब

यानी ख़ुदा ने पैग़म्बर साहब से कहा कि मैं कहीं नहीं रहता हूँ, न आसमान में और न ज़मीन में, पर अपने प्रेमी भक्तों के हृदय में रहता हूँ। जो मुझ को चाहे, वहाँ जाकर उनसे माँगे। इस वास्ते हर एक सच्चे चाहने वाले मालिक के को मुनासिब है कि अपने वक़्त का सतगुरु खोज कर उन से उपदेश लेवे और उन्हीं के चरनों में तन

१—दंडवत करना।

मन धन से सेवा और प्रीति और प्रतीत करे। थोड़े ही अरसे में उस का काम बन जावेगा। संस्कृत में भी कहा है

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

श्रीकृष्ण महाराज ने भी भागवत और गीता में लिखा है कि जो कोई मुझ से मिला चाहे और मेरी सेवा और प्रीति करना चाहे तो मेरे जो प्रेमी जन साध और भक्त हैं, उनकी जो सेवा करेगा, वह मेरी सेवा है और मैं उस से प्रसन्न होऊँगा और वही मेरा प्यारा है जो मेरे सच्चे भक्तों से प्रीति करता है और न मैं आकाश में रहता हूँ और न पाताल में और न मैं स्वर्ग में रहता हूँ और न बैकुंठ में। जो साध और भक्त जन मेरे प्रेमी हैं, उनके हृदय में मेरा निवास है॥

५४–और मालूम होवे कि संत सतगुरु ने जो नर स्वरूप धारण किया है, वह दिखलाने के वास्ते है। पर असली स्वरूप उनका मालिक के स्वरूप से मिला हुआ है। किस वास्ते कि वह हर वक़्त

सच्चे मालिक यानी सत्तपुरुष के आनंद में मगन रहते हैं और सच्चे खोजी को जब तक कि अपने अंतर में निज स्वरूप के दर्शन प्राप्त न होवें, तब तक सतगुरु के ही स्वरूप को मालिक का स्वरूप समझे और उनके चरणों में प्रीति और प्रतीत बढ़ाता जावे और जब उसको अंतर में निज दर्शन प्राप्त हुआ, फिर वह सच्चे मालिक यानी पूरे सतगुरु के चरनों में मिल गया और सतगुरु का स्वरूप हो गया और उसी का काम पूरा हुआ। इस से समझना चाहिये कि जिसका काम बना है या बनेगा, अपने वक़्त के सतगुरु की प्रीति और सेवा और सतसंग से बना है और पिछले संत और गुरु व अवतार और पैग़म्बर व देवता उपदेश नहीं कर सकते और न अपना निज रूप दिखा सकते हैं। इस सबब से उनमें खोजी को सच्ची प्रीति और प्रतीत नहीं हो सकती है और जो किसी को प्रीति सच्ची भी हुई तो वह जैसा है, वैसा ही रहेगा। अलबत्ता थोड़ी सफ़ाई अंतर की हो जावेगी। लेकिन रूह यानी सुरत का स्थान नहीं बदलेगा यानी चढ़ाई सुरत

की नहीं होगी। फिर ऐसी मेहनत और दिक़्क़त से जो कुछ प्राप्त हुआ तो सुरत तो ब-दस्तूर स्थान मलीन पर ठहरी रही। यह सफ़ाई क़ायम नहीं रहेगी। किस वास्ते कि इस स्थान पर माया का चक्कर चल रहा है। जब ज़ोर करेगा, तब ही वह शख़्स अपनी प्रीति और प्रतीत से गिर जावेगा और भोगों के स्वाद और रस में फँस जावेगा और यह मुमकिन नहीं है कि किसी को निज स्वरूप का ज्ञान हासिल होवे या उसके विकार बिलकुल दूर हो जावें, जब तक कि सतगुरु पूरे की सेवा और सतसंग करके उनकी दया और मेहर हासिल नहीं करेगा। बिना वक़्त के सतगुरु के बहुत से संशय और शुबहे हैं कि उन की इस मनुष्य को ख़बर भी नहीं पड़ती और यह अपने मन में जानता है कि मेरे कोई संशय बाक़ी नहीं रहा। पर जब संतों के सतसंग में आवे, तब मालूम पड़े कि किस क़दर संशय और शुबहे बाक़ी हैं और सच्चा प्रेम और प्रतीत हासिल होना किस क़दर मुश्किल है और धुर पद किस क़दर दूर और दराज़ है। ख़ुलासा यह कि सच्चा प्रेम और परमार्थ

का प्राप्त होना बिना कृपा और मदद अपने वक़्त के पूरे सतगुरु के किसी तरह मुमकिन नहीं है। अवतार भी जो दुनिया में आये, उनको भी गुरु धारन करना पड़ा और सुखदेवजी से ज्ञानी जिनको माता के गर्भ में ज्ञान प्राप्त हुआ था, वे उपदेश गुरू के क़दम न बढ़ा सके और ख़ुद नारद जी ने जिनको ताक़त बैकुंठ तक आने जाने की हासिल थी, तो भी बग़ैर गुरु धारन किये हुये, वहाँ विश्राम पाने की गति नहीं हुई। फिर इस जीव की क्या ताक़त है कि बिना मेहर सतगुरु पूरे अपने वक़्त के, सच्चे परमार्थ के रास्ते में क़दम उठा सके ?

५५—बाज़े वेद और शास्त्र और ग्रन्थ को गुरु मानते हैं और इसमें शक नहीं है कि उनके देखने से बहुत सा हाल मालूम होता है पर जो कोई सिर्फ़ इनके पढ़ने और सुनने में रहा और खोज सतगुरु का न किया तो वह भी नादान और मूरख है, किस वास्ते कि जो भेद और तरीक़ा अभ्यास का सतगुरु वक़्त से मालूम हो सकता है, वह लिखने में नहीं आ सकता है और न उसका

ज़िक्र पोथियों और शास्त्र में लिखा है, सिर्फ़ उसमें इशारे किये हैं और वह गवाही के वास्ते काफ़ी हैं, बाक़ी गुरु और मुर्शिद पर रक्खा है। पोथी पढ़ने से विद्या आवेगी, पर रास्ता सच्चे मालिक से मिलने का नहीं मालूम होगा। इस वास्ते पोथी और शास्त्र मददगार हैं और दुरुस्ती व्यवहार की थोड़ी बहुत उनके पढ़ने और समझने से हो सकती है यानी उन से इतना मालूम हो जावेगा कि यह काम बुरा है और यह काम अच्छा है और जो कोई दर्दी और परमार्थी है, वह बुरे काम को छोड़ता जावेगा और जो अच्छा काम है, उसको करना शुरू करेगा। पर मन का नाश होना और कुल्ल विकारों का दूर होना, बिना मेहर और दया सतगुरु पूरे के नहीं हो सकता है और जब तक मन बाक़ी है, तब तक बीज बुराई और विकारों का मौजूद है। अगर इस दरख़्त की डाली और पत्ते झड़ गये तो क्या, जब तक बीज मौजूद है तो जब कभी माया के भोग और उनके स्वादों का रस मिलेगा तो डाली और पत्ते सब हरे हो जावेंगे और नई नई डालियाँ पैदा हो

जावेंगी। इस वास्ते समझना चाहिये कि वेद और शास्त्र और पोथी से कुछ भेद मालिक का और गवाही वास्ते सतगुरु की पहिचान के मिल सकती है और कुछ बुराई और भलाई और पाप और पुण्य की पहिचान भी हो जावेगी, सिवाय इसके और ज़्यादा फ़ायदा उन से नहीं हो सकता है और असल और सच्चे परमार्थ का हासिल होना तो सिर्फ़ सतगुरु पूरे से होगा और ऐसे गुरु का खोज करना सच्चे खोजी को ज़रूर है। जो पिछलों की टेक बाँध कर चुप हो रहे, वह सच्चे ख़्वाहिशमन्द[१] मालिक से मिलने के नहीं हैं और इस वास्ते वह उसका दर्शन भी नहीं पावेंगे॥

५६—सतगुरु पूरे को खोज करके धारन करना चाहिये और पूरे सतगुरु वही हैं जो सत्तलोक में पहुँच कर सत्तपुरुष से मिल रहे हैं। उन्हीं को संत कहते हैं और वे जब मिलेंगे, तब सिवाय सुरत शब्द मार्ग के दूसरा उपदेश नहीं करेंगे और घट में रास्ता और भेद स्थानों का लखावेंगे

१—चाहने वाले।

और सुरत यानी रूह को सतगुरु के स्वरूप और शब्द के आसरे अंतर में चढ़ाने की ताकीद करेंगे और उनके सतसंग और बानी में भी इसी भेद का ज़िक्र और महिमा सतगुरु सत्त पुरुष और उन के शब्द स्वरूप की और हाल रास्ते और कैफ़ि-यत अनुराग और प्रेम और बैराग वग़ैरा की वर्णन होगी और जहाँ कहीं सतसंग में क़िस्से कहानी और लीला पिछलों की वर्णन होवे या सिर्फ़ बैराग पर ज़ोर दिया जावे और अंतर का भेद या जुगत मन के स्थिर करने और चढ़ाने का कुछ ज़िक्र भी न होवे तो संतों के बचन के अनुसार उसका नाम सतसंग नहीं है, क्योंकि सतसंग के अर्थ ये हैं कि जहाँ कहीं सत्त यानी सत्त पुरुष का संग होवे, सो संत ख़ुद सत्त पुरुष स्वरूप हैं, उनका संग सतसंग है और जो उनकी बानी और बचन हैं, उनमें या तो महिमा सत्त पुरुष राधास्वामी और उनके संत सतगुरु स्वरूप की वर्णन की है या जुगत उनके निज रूप और निज धाम के प्राप्ति की या ज़िक्र प्रेम और प्रतीत का उनके चरणों में और उनके

शब्द की धुन में या उस हालत का जो अनुरागी अभ्यासी को रास्ते में मुक़ाम मुक़ाम के पहुँचने पर हासिल होती है, वर्णन किया है तो ऐसी बानी और बचन का सुनना और उसको विचारना और उसको धारण करना और अंतर में उनके चरन अथवा शब्द में मन और सुरत को जोड़ना, यह सतसंग है और मालूम होवे कि हर मत के पिछले ग्रन्थों में जगह जगह निहायत महिमा सतसंग की करी है कि ज़रा से सतसंग से भी कोटि जन्म के पाप कटते हैं और जीव का कल्याण होता है। सो इसकी पहिचान जो कोई चाहे सतगुरु के संग में यानी चाहे उनके चरणों में रह कर बानी बचन सुने और दर्शन करे और चाहे उनके अभ्यास में मन और सुरत को जोड़ कर परख लेवे। सो जो कोई ऐसी पहिचान करेगा, उसको आप इस बात की सचौटी की प्रतीत हो जावेगी और वह आप देख लेगा कि थोड़े दिनों के संग से और थोड़े अरसे अंतर में संतों की जुगत की कमाई करने से क्या फल प्राप्त होता है॥

५७—बड़ा अफ़सोस आता है कि आजकल बहुत से जीव ऐसे लोगों की बड़ी महिमा समझते हैं जो कि तप करते हैं यानी पंच अगिन तपते हैं या हाथ सुखाये फिरते हैं या जल में खड़े रहते हैं या मेख़ और कीलों पर बैठते हैं या दिन रात मैदान में नंगे बैठे रहते हैं या खड़े रहते हैं या और किसी तरह अपनी देह को दुख देकर तमाशा दिखाते हैं या अन्न की ग़िज़ा छोड़ कर सिर्फ़ दूध पीते हैं या रात भर या दिन भर पाठ करते रहते हैं या गुफा में बैठ कर सुमिरन और ध्यान करते हैं या जंगल और पहाड़ में जाकर बसते हैं या मौन धारण करते हैं और किसी से नहीं बोलते हैं या और अनेक तरह के पाखंड दिखाते हैं। इन लोगों की ज़ाहिरी हालत बड़ी आश्चर्य रूप दिखाई देती है कि उससे देखने वाले के चित्त में उनकी बड़ी महिमा समाती है, पर जो उनसे चर्चा या बचन किये जावें तो हाल उनका मालूम पड़े कि किस मतलब से या कौन सी चाह लेकर या किस मज़े के वास्ते या किस वजह से यह काम उन्होंने

इख़्तियार किये हैं। तब असल हाल उनका दरियाफ़्त हो जावेगा कि वह सच्चे परमार्थी हैं या कपटी हैं या पाखंडी। अब समझना चाहिये कि सच्चा परमार्थी कौन है और कपटी और स्वार्थी कौन है। सच्चा परमार्थी वह है जो कुल्ल काम वास्ते इस मतलब के करता है कि सच्चे मालिक का दर्शन मिले और वह उस पर इस क़दर मेहरबान होवे कि निज धाम में बासा देवे ताकि हमेशा का आनन्द प्राप्त होवे और आवा-गवन के सुख दुख से छूट जावे, सिवाय इसके दूसरी चाह इसके अंतर में नहीं है और कपटी और स्वार्थी और पाखंडी का यह हाल है कि जो काम वे करें, इस मतलब से करें कि जिस में उन की मान और प्रतिष्ठा और पूजा होवे और राज और धन और भोग मिलें और सब लोग उनकी स्तुति करें और बड़ा मानें, चाहे इस लोक के भोग और मान की चाह होवे चाहे स्वर्ग व बैकुंठ और ब्रह्म लोक की। इन दोनों में कुछ बहुत फ़र्क़ नहीं है, क्योंकि एक जगह के भोग जल्दी नाश होते हैं

और दूसरी जगह के देर बाद और चाहे कोई स्वर्ग और बैकुंठ और चाहे ब्रह्म लोक में पहुँचे और मृत्यु लोक में रहे, दोनों जगह काल और माया के पेट में है। सच्ची मोक्ष नहीं हो सकती। वह बारम्बार जन्मेगा और मरेगा और दुख सुख भोगना पड़ेगा। कृष्ण महाराज ने अर्जुन को इशारा तरफ़ एक चींटे के करके कहा कि यह बहुत बार ब्रह्मा हो चुका है और बहुत बार इंद्र और इसी तरह और और बड़ी बड़ी गति पा चुका है। अब इस जनम में चींटा हुआ है। अब समझना चाहिये कि जब ब्रह्मा और इन्द्र चौरासी के चक्कर से नहीं बचे, फिर जो जीव कि उनके लोक की आशा बाँध कर अभ्यास करते हैं, वह कैसे अमर होंगे और चौरासी के चक्कर से कैसे बचेंगे। इस वास्ते जो कोई कि ऐसे कर्म कर रहे हैं, जैसे होम और यज्ञ और तीर्थ और व्रत और मूर्त्ति पूजा और चार धाम परिक्रमा और जो जीव कि भक्ति कर रहे हैं, जैसे भक्ति सूर्य और चन्द्रमा की या गणेश और शिव और विष्णु और ब्रह्मा और शक्ति की या अवतार

स्वरूप ईश्वर की, उन सब की गति ईश्वर के लोक यानी बैकुंठ से ज़्यादा नहीं हो सकती और ऐसी भक्ति करके अपने अपने उपास्य के लोक में यानी सूर्य लोक, चन्द्र लोक, स्वर्ग लोक, शिव लोक, विष्णु लोक, शक्ति लोक, ब्रह्म लोक और बैकुंठ लोक वग़ैरा में पहुँच कर और वहाँ कुछ अरसे बास करके फिर मृत्यु लोक में जन्मेंगे और फिर चौरासी के चक्कर में आवेंगे और जो कोई और छोटे देवताओं की भक्ति कर रहे हैं, उनका तो कुछ ज़िक्र ही नहीं है, वह तो इसी मृत्यु लोक में उस का फल पाकर यानी कुछ माया का सामान या सिद्धि और शक्ति हासिल करके फिर चौरासी के चक्कर में आवेंगे ॥

५८—ऐसे लोग जो कि ब्रह्म ज्ञानी अपने को कहते हैं, आज कल बहुत हैं और अपने को सबसे उत्तम जानते हैं। ब्रह्म ज्ञान हक़ीक़त में इन सब अभ्यासों से जिनका ज़िक्र पीछे हुआ, बहुत बड़ा है, पर जो सच्चा होवे और जो पोथियाँ पढ़ कर ज्ञान हुआ, उसका नाम विद्या ज्ञान है। उस

से मोक्ष कभी हासिल नहीं होगी, क्योंकि ज्ञान के ग्रन्थों में जगह २ लिखा है कि "तत्व ज्ञान मनो-बासना नाश" यानी जब तक कि मन और बासना का नाश न होगा, तब तक तत्त्व यानी मालिक का ज्ञान हासिल न होगा और मन और बासना का नाश बिना योगाभ्यास के मुमकिन नहीं है, फिर जब तक कि योग की साधना नहीं करे तो वह ज्ञान बाचक है। इस क़दर तो हर एक शख़्स जिस को विद्या हासिल हुई, कह सकता है और समझ सकता है। फिर इसमें क्या बड़ाई हुई और मन और इन्द्रियों का क्या दमन हुआ ? आज कल जो अपने तईं ब्रह्म-ज्ञानी कहते हैं, जो उनसे पूछा जावे कि कहो क्या साधना करके तुमने ज्ञान पाया तो नाराज़ हो जाते हैं। बाज़े कहते हैं कि पिछले जन्म में कर आये। जो यह बात सही होती तो उनको साधना की जुगती की ख़बर होती यानी याद ज़रूर होनी चाहिये थी क्योंकि ब्रह्म-ज्ञानी और ब्रह्म में कुछ भेद नहीं है। यह कहा है कि "ब्रह्मवित ब्रह्मैव भवति" और दूसरा "इज़ा

तमउल फ़क़्र फ़हो अल्लाहो।" फिर सूफ़ी या ज्ञानी को सब हालतों की ख़बर होनी चाहिये और इन ब्रह्म-ज्ञानियों का यह हाल है कि इनको अपने मन और इन्द्रियों की भी ख़बर नहीं कि वे क्या २ काम उनसे करा रही हैं। ऐसी सूरत में अपने को ज्ञानी कहना और ब्रह्म मानना, यह उनकी बड़ी भूल मालूम होती है और इसका फल वही है जो कर्मियों को मिलेगा यानी चौरासी का चक्कर भोगना पड़ेगा॥

५९—जो पिछले वक़्तों में ज्ञानी हुये जैसे कि व्यास और वशिष्ठ और राम और कृष्ण, वे सब जोगेश्वर ज्ञानी थे और प्रकाशक थे और चारों साधन उनके पूरे हुये थे और इस वास्ते वे यह क़ैद लगा गये कि जिसमें यह चार साधन नहीं हैं, वह ज्ञानी नहीं हो सकता बल्कि ज्ञान के ग्रन्थों के पढ़ने का अधिकारी भी नहीं है और वह चार साधन यह हैं। पहिला बैराग, दूसरा विवेक, तीसरा षट सम्पत्ति। इस में छः साधन हैं। पहिला सम, दूसरा दम, तीसरा उपरती, चौथा तितिच्छा,

पाँचवाँ सरधा, छठा समाधानता। और चौथा मुमोत्तुता। आज कल के ज्ञानियों में इन में से एक साधन भी नज़र नहीं आता। उन्होंने घर त्यागने को बैराग समझा और पोथी पढ़ने और बिचारने को विवेक और षट सम्पत्ति को भी ऐसे ही अपने में घटा लिया कि देर अबेर भूख प्यास की बरदाश्त है, सर्दी गर्मी की भी थोड़ी बहुत बरदाश्त कर लेते हैं, कभी इन्द्रिय और मन भी वक़्त पढ़ने और विचारने पोथियों के रुक जाते हैं और ज्ञानियों से मिलना और ज्ञान के ग्रन्थों के पढ़ने और पढ़ाने के शौक़ को मुमोत्तुता समझ लिया। जब यह समझ है तो अब उनसे क्या कहा जावे ? इस मूरखता पर अफ़सोस आता है कि मेला और तमाशा और सैर देशान्तर की और नामवरी के वास्ते भंडारे करने और झंडा खड़ा करके ग़ोल बाँधने वग़ैरा की तो इनके चित्त में ऐसी लाग है कि रेल के ख़र्च के और भंडारे के ख़र्च के लिये अदना अदना गृहस्थियों के रू-ब-रू दीन होकर और राजों और साहूकारों से रुपया लेकर

जोड़ते हैं और फिर अपने तईं बैरागवान कहते हैं, इस से ज़ाहिर है कि उनको बैराग के स्वरूप और अवधि की ज़रा भी ख़बर नहीं है और पोथियाँ पढ़ने और पढ़ाने का शौक़ नित्य बढ़ता जाता है। तो आश्चर्य आता है कि यह कैसा ब्रह्मानन्द इनको प्राप्त हुआ कि जिस से ज़रा भी मन इनका नहीं बदला और जो पूछो तो कहते हैं कि यह काम हम उपकार के वास्ते करते हैं। यह कहना उनका साबित करता है कि उनको यह भी मालूम नहीं है कि उपकार किसका नाम है। जो कोई ज्ञानी है, वह जीवों के कल्याण करने के लिये समर्थ होना चाहिये। जीवों को बंद से छुड़ा कर मोक्ष पद में पहुँचाना, इसका नाम उपकार है और विद्या पढ़ा कर लोगों को अहंकारी बनाना और खाना खिलाना और मंदिर और बाग़ और धर्मशाला बनाना और सदाबर्त लगाना, इस का नाम उपकार नहीं है। ऐसे उपकार के वास्ते तो साहूकार और राजे पैदा किये गये हैं, न कि ब्रह्म-ज्ञानी। ब्रह्म-ज्ञानी को तो चाहिये कि जीवों को

उन के मन और इन्द्रियों के बंधन से छुड़ा कर उन के निज स्वरूप को लखाना और उसमें पहुँचाना, ताकि आवा-गवन से रहित हो जावें और कष्ट और क्लेश की निवृत्ति हो जावे। सो यह बेचारे क्या करें, उन्होंने अपने जीव का कल्याण तो किया ही नहीं, दूसरे का क्या कल्याण करेंगे ? न मालूम क्या दुख पड़े या क्या आफ़त और घर की लड़ाई या झगड़े ने घेरा या कि आलस और सुस्ती ने दबा लिया कि घर बार छोड़ दिया और मुफ़्त में खाना और कपड़ा हासिल करने और अपनी मान और बड़ाई और पुजवाने की आसा लेकर भेष ले लिया और जब यह बात उनको थोड़ी बहुत प्राप्त हो गई तब अपने तई बड़ा आदमी और उत्तम पुरुष या कि ख़ुद ब्रह्म-स्वरूप मान लिया और लोगों का धन खैंचना और कोठियाँ चलाना या रुपया जमा करके ब्याज लेना और व्यापार करना शुरू किया, ताकि और ज़्यादा नामवरी पैदा करें और दस बीस सौ पचास साधू घेर कर उन्हें खाना खिला कर उनसे सेवा करावें और

अपनी सवारी में उनको अर्दली बना कर निकालें और मेलों में हाथी घोड़े पालकी और नालकी जमा करके और इधर उधर से निशान नक़्क़ारे माँग कर शाही निकालें। अब ग़ौर करने का मुक़ाम है कि क्या ऐसे लोग ब्रह्म-ज्ञानी हो सकते हैं कि जिनके मन में यह हिर्स और हविस भरी हैं और जब उनकी यह ख़्वाहिशें पूरी होती हैं, तब महा मगन होते हैं और औरों पर तान और अहंकार करते हैं और अपने तईं महात्मा, पंडित और विद्यावान और महंत कहलाते हैं और गृहस्थियों से मदद लेकर एक दूसरे ग़ोल पर अपनी रौनक़ और जलूस दिखा कर मान बड़ाई चाहते हैं? यह तो अहंकार और मान में भूल गये और मन और माया के चक्कर में ऐसे फँसे कि अब निकल नहीं सकते और जो कोई उनको यह कसरें उनके ज्ञान की जतावे तो उससे नाराज़ होकर लड़ने को तैयार होते हैं और उसको अभक्त और नास्तिक और सख़्त और सुस्त कहते हैं॥

६०—अब ग़ौर करना चाहिये कि ऐसे ज्ञानियों में और तीर्थ और मूर्ति पूजा करने वालों में क्या फ़र्क़ किया जावे? बल्कि यह बेहतर है कि वे अनजान हैं और समझाये से समझ सकते हैं और वे जो ज्ञानी हैं, जान बूझ कर माया की तरफ़ मुतवज्जह होते हैं और समझाने वाले को नादान और ईर्षावान कह कर उसका बचन नहीं मानते। सबब इसका यह है कि पूरा गुरु दोनों में से एक को भी नहीं मिला। जो सतगुरु मिलते तो इनसे भक्ति मार्ग की रीति से सुरत शब्द जोग का अभ्यास कराते, तब कैफ़ियत आप खुल जाती यानी पहले सफ़ाई मन की और प्रेम प्राप्त होता और फिर स्वरूप का दर्शन इनको अंतर में मिलता और आनन्द उसका आता, तब इस मृत्यु लोक के भोगों की बासना और आशा न उठाते और ऐसे रगड़ों और झगड़ों में जिस में कि अब यह लोग फँसे मालूम होते हैं, न पड़ते॥

६१—यही हाल गृहस्थियों का जिन को ऐसे बाचक ज्ञानियों का संग हुआ, दिखलाई

देता है। ज़बान से तो अपनी तईं ब्रह्म बताते हैं और बरताव और रहनी जो उनकी देखो तो संसारियों से कुछ कम नहीं मालूम होती है और अपनी समझ बूझ का अहंकार दिल में ज़्यादा मालूम होता है। यह अहंकार सब पापों का मूल है। जिसको अहंकार आया वही नीचे गिरा। फिर जैसे यह और जैसे इनके उस्ताद सिखाने वाले; भेष और पंडित, दोनों काल और कर्म और माया के चक्कर में पड़े हैं और आइन्दा अपनी अपनी करनी का फल भोगेंगे। इस रीति से उनका उद्धार या मुक्ति नहीं हो सकती है॥

६२–आज कल विद्या का बिस्तार बहुत है और ब-सबब हासिल होने इल्म और अक़्ल के बाहरमुखी पूजा हर एक को ओछी और फ़िज़ूल नज़र आती है और इस में कुछ शक भी नहीं कि वे सब नक़्ल हैं और उनसे कुछ भी फ़ायदा हासिल नहीं होता। मगर इनको उस उपासना और अभ्यास की जिस में तन और मन पर दबाव और ज़ोर पड़ता है, तलाश बहुत कम है

और न उसकी मेहनत और दिक़्क़त किसी को गवारा होती है। इस वास्ते कुल मतों के विद्यावान ज्ञान मत को पसन्द करके उस पर ऐतक़ाद[1] लाते हैं और बाचक ज्ञानी या सूफ़ी या ब्रह्म-ज्ञानी बनते चले जाते हैं पर अपनी हालत को ज़रा भी नहीं परखते और न दूसरों से परखाते हैं और विद्या बुद्धि की दलीलों से लोगों को क़ायल माक़ूल करने को तैयार रहते हैं। ग़ौर का मुक़ाम है कि जब तक काम और क्रोध और लोभ और मोह और अहंकार मौजूद हैं, तब तक पूर्ण ब्रह्म पद कैसे प्राप्त हो सकता है? अगर दो चार ग्रन्थ पढ़ कर समझ लेने का नाम ब्रह्म-ज्ञान है, तो ऐसे ब्रह्म-ज्ञानी बनने में क्या मेहनत पड़ती है? हर एक शख़्स जिसको किसी क़दर विद्या और बुद्धि हासिल है, वही ज्ञान के ग्रन्थ पढ़ सकता है। पर सफ़ाई अंतर की मन और इन्द्रिय को रोक कर और बात है। यह बिना योगाभ्यास के हासिल होना ना-मुमकिन है॥

६३—जो कोई इन ज्ञानियों से कहे कि ज़रा

१—निश्चय।

अभ्यास में बैठो और अपने स्वरूप में लगो तो मन चंचल उनको ज़रा भी बैठने नहीं देता है। जो सुरत शब्द जोग का अभ्यास संतों की रीति से करते तो अपनी परख होती और मन चंचल की ख़बर पड़ती, सो सुरत शब्द जोग की ख़बर नहीं और न योगाभ्यास की चाह है, बल्कि उसकी ज़रूरत भी नहीं समझते हैं और इनमें से बाज़ों ने अभ्यास क्या मुक़र्रर किया है कि जो कुछ कि पोथियों में पढ़ा है, उसका विचारना और अपने तईं सबसे न्यारा ख़्याल करना कि मैं मन नहीं, तन नहीं, इन्द्रिय नहीं, पदार्थ नहीं, मैं माया से अलेहदा हूँ, अजन्मा हूँ और अलिप्त हूँ और ऐसा हूँ और वैसा हूँ और इसी ख़्याल करने को अभ्यास माना है और इसी गुनावन में जो ज़रा निश्चलता मन को हुई, उसी को आत्मा-नंद समझा है। ऐसा आनन्द तो शेख़ चिल्ली को भी हासिल हुआ था, जब उसने यह ख़्याल किया कि मैं फ़लाने देश का राजा हूँ और ऐसा ऐसा मेरा मकान और ऐसा जलूस है। जब आँख

खोली तो कुछ भी नहीं देखा ॥

६४–ग़ौर करके देखा जाता है तो ऐसा ही हाल इन ज्ञानियों का मालूम होता है कि अपने को ब्रह्म स्वरूप और सत् चित् आनन्द स्वरूप कहते हैं और जब किसी ने कड़ुवा या तान का बचन कहा तो क्रोध करने को तैयार हैं और जब कोई अच्छा पदार्थ देखा या सुना तो उसके लेने और देखने को तैयार हैं और जो किसी ने स्तुति करी तो उससे मगन और राज़ी हैं और जो किसी ने निंदा करी तो उससे नाराज़ होते हैं और लड़ने और झगड़ा करने को तैयार हैं और मन की चंचलता करके एक जगह एक देश में कभी नहीं ठहरा जाता। जो आत्मानंद आया होता तो क्या यह दशा होती कि देश विदेश मारे मारे फिरते और सैर और तमाशा देखने के लिए हर एक से ख़र्च माँगते फिरते और तीर्थों और मंदिरों में कर्मियों के संग टक्करें मारते ? एक शख़्स जिसके पास कुछ दाम नहीं है और जब उसको दो चार हज़ार रुपये मिल गये तो उसी

रुपये से अपना कारोबार चला कर एक जगह आनंद से चुप होकर बैठ रहता है और जो किसी को कोई नौकरी मिल गई तो फिर कहीं तलाश को नहीं जाता है और उसी के आनंद में मगन रहता है और अटक और भटक छोड़ देता है। यह कैसे ब्रह्म स्वरूप ज्ञानी कि अपने को ब्रह्म और आत्मा बतलाते हैं और फिर उन को इस क़दर भी उस ब्रह्म और आत्मा का आनन्द न मिला कि दो चार बरस भी एक जगह बैठ कर उसका रस लेते और मेला और तमाशा और बाग़ और मकानात और देशान्तर की सैर के लिए मारे मारे न फिरते ? ऐसी हालत से उनकी साफ़ ज़ाहिर है कि उनका ज्ञान, विद्या ज्ञान यानी बातों का ज्ञान है, असली ज्ञान नहीं है और आत्मानंद या ब्रह्मानंद जिसकी वे ऐसी बड़ाई और सिफ़्त करते हैं, उनको ज़रा भी प्राप्त न हुआ ॥

६५–असली ज्ञान उसका नाम है कि ब्रह्म का दर्शन साक्षात हो जावे। उसका रस ऐसा है कि गृहस्थ आश्रम क्या, सात विलायत के राज

पर ठोकर मारता है। पर वह रस मिलना चाहिये। संतों के मत में ब्रह्म नाम ईश्वर के लच्च स्वरूप का है और यह लक्ष स्वरूप ही माया सबल है पर वेदान्ती ब्रह्म के लच्च स्वरूप को शुद्ध और ईश्वर स्वरूप को वाच और माया सबल कहते हैं। मगर संत जो इन दोनों स्वरूप के परे पहुँचे, फ़रमाते हैं कि ब्रह्म के दोनों स्वरूप यानी वाच और लच्च माया सबल हैं यानी एक जगह माया प्रकट है और दूसरी जगह यानी लच्च में बहुत बारीक और गुप्त है॥

६६—अब मालूम होवे कि कुल्ल औतार दर्जे आला[1] के और योगेश्वर ज्ञानी और जितने कि देवता और पैग़म्बर और अवतार दर्जे अदना[2] के हैं, ईश्वर के लच्च स्वरूप यानी ब्रह्म से, ख़्वाह उसके वाच स्वरूप से, प्रकट हुये। इस सबब से जो कोई कि उसके वाच स्वरूप के उपासक हैं या उसके लच्च स्वरूप के ज्ञानी हैं, वे सब माया और काल की हद्द से बाहर नहीं हुये और इसी वजह से जनम मरन से नहीं बच सकते॥

६७—संत सतगुरु का मारग सबसे ऊँचा है

१—बड़ा। १—छोटा।

और वह उपासना सच्चे मालिक यानी सत्तपुरुष राधास्वामी की जो ब्रह्म और पार-ब्रह्म के परे हैं, बतलाते हैं ताकि जीव माया की हद्द से परे हो जावे। सच्चे साध की गति दसवें द्वार यानी सुन्न पद तक है और वही योगेश्वर ज्ञानी है और जो कोई कि इस मुक़ाम के नीचे रहे, उनका दर्जा पूरे साध से कम है। इस वास्ते हर एक शख़्स को जो कोई अपना सच्चा उद्धार चाहे, मुनासिब है कि संतों का इष्ट यानी सत्तपुरुष राधास्वामी का इष्ट धारण करे। यह नाम "राधास्वामी", कुल्ल-मालिक ने आप प्रकट किया है। जिस किसी को इस नाम का भेद मिल जावे और वह राधास्वामी की सरन लेकर इस नाम का संतों की जुगत यानी तरीक़ के मुवाफ़िक जाप करे या अंतरी सुमरिन करे या अपने अंतर में नाम की धुन सुने तो ज़रूर उसका उद्धार होगा और यह बात चंद रोज़ के अभ्यास में उसको आप अपने अंतर में साबित हो जावेगी॥

६८—यह ज़िक्र ऊपर हो चुका है कि कुल्ल अवतार और योगेश्वर ज्ञानी और पैग़म्बर और

योगी ज्ञानी वग़ैरा मुक़ाम दसवें द्वार या त्रिकुटी या सहसदलकँवल से प्रकट हुये और चारों वेद नाद यानी प्रणव से, त्रिकुटी के मुक़ाम पर, प्रकट हुये और देवता जैसे ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, सहस-दल कँवल के नीचे से प्रकट हुये। इस वास्ते इन सब का दर्जा संतों के और सत्तपुरुष के दर्जे से नीचा है यानी संतों की बड़ाई इन सब से ज़्यादा है। यह सब संतों के आधीन हैं और संत सिर्फ़ सत्तपुरुष राधास्वामी के आधीन हैं। इसी सबब से संत और फ़क़ीरों का बचन और बानी, वेद और शास्त्र और क़ुरान और पुराण पर फ़ाइक़[1] है यानी इनसे ऊँचा है। वेद और क़ुरान और पुराण बतौर क़ानून, वास्ते बन्दोबस्त दुनिया के, हैं। इनमें अव्वल मतलब प्रवृत्ति यानी दुनिया के बन्दो-बस्त और क़याम यानी ठहराव का है और थोड़ा सा ज़िक्र निवृत्ति यानी नजात का है और संतों के बचन में असली मतलब निवृत्ति यानी मोक्ष का ज़िक्र है। इस वास्ते उनकी बानी और बचन सब आसमानी किताबों पर

१—बढ़कर।

फ़ाइक़[१] है और यही बड़ाई संतों की है, क्योंकि वेद और कुल्ल किताबें आसमानी उस स्थान से प्रकट हुई हैं, जहाँ से तीन गुण और पाँच तत्त्व पैदा हुए और माया यानी क़ुदरत ने ज़हूरा किया और संतों का बचन उस स्थान से प्रकट हुआ, जहाँ माया का नाम व निशान भी नहीं है। इस वास्ते वह सिर्फ़ निवृत्ति का ज़िक्र करते हैं और यह निवृत्ति और प्रवृत्ति दोनों का ज़िक्र करते हैं बल्कि प्रवृत्ति का ज़िक्र कसरत से किया है यानी वेद में अस्सी हज़ार कर्म कांड के श्लोक हैं, यह प्रवृत्ति है, और सोलह हज़ार उपासना कांड और सिर्फ़ चार हज़ार निवृत्ति यानी ज्ञान कांड के श्लोक हैं। यही हाल थोड़ा बहुत क़ुरान और दूसरी आसमानी किताबों का है कि तवारीख़ी हालात बहुत वर्णन किये हैं और तरीक़ा अभ्यास और शिनाख़्त[२] मालिक कुल्ल का बहुत कम बयान किया है। ख़ुद श्रीकृष्ण महाराज ने अर्जुन से गीता में कहा है कि वेद की हद्द से जो कि तीन गुण से मिला

१—बढ़कर। २—पहिचान।

हुआ है, न्यारा हो यानी उसके ऊपर स्थान हासिल कर। श्लोक यह है

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन

और ऐसा भी कहा है कि जब तक शख़्स वर्णाश्रम के कर्म और धर्म यानी उपासना में फँसा है, तब तक वह वेद का दास है यानी उसको वेद के कहने पर चलना चाहिये और जब वह माया और तीन गुण की हद्द से निकल गया, तब वेद के सिर पर उसके चरन हैं यानी वह वेद के कर्त्ता का कर्त्ता है और इसका हुक्म वेद के हुक्म के ऊपर है। श्लोक भी लिखा जाता है

वर्णाश्रमाभिमानेन श्रुतिदासो भवेन्नरः ।
वर्णाश्रमविहीनश्च श्रुतिपादोथ मूर्ध्वनि ॥

इस तरह मुसलमान फ़क़ीर कामिल भी शरअ के पाबंद नहीं, बल्कि शरअ के हुक्म पर उनका हुक्म है॥

६९—यह क़ौल उन संतों के यानी सच्चे और पूरे आशिक़ों के हैं जो कि सत्तलोक में पहुँच कर सच्चे मालिक और ख़ुदा से मिले और वहाँ से देखते हैं कि बे-शुमार त्रिलोकियाँ और बे-शुमार ब्रह्मांड और हर एक ब्रह्मांड में अलेहदा

अलेहदा ब्रह्म व ईश्वर और माया और शक्ति यानी दुनियादारों का ख़ुदा और उसकी क़ुदरत और बे-शुमार अवतार और बे-शुमार ब्रह्मा और विष्णु और महादेव और देवता और पैग़म्बर और औलिया और अम्बिया और क़ुतुब और फ़िरिश्ते और जोगेश्वर और ज्ञानी और ऋषीश्वर और मुनीश्वर और सिद्ध और जोगी और इन्द्र और गन्धर्व हैं। ऐसे जो संत हैं, वह कब इनकी तरफ़ दृष्टि लावेंगे और कब उनके हुक्म के पाबन्द होंगे ? हर एक त्रिलोकी का एक एक धनी यानी मालिक है, जिसको ब्रह्म और ईश्वर यानी माया सबल कहते हैं। स्थान इसका त्रिकुटी है और सहसदलकँवल है। ऐसे ऐसे बेशुमार ब्रह्म और ईश्वर उस परम पद यानी सत्तपुरुष राधास्वामी के पैदा किये हुए हैं। सिर्फ़ संत इस पद में पहुँचे हैं, और दूसरे की ताक़त नहीं है। लेकिन जो कोई उनके बचन पर निश्चय लावे और उन से प्रेम और प्रीति करे और उनका सतसंग करे, उसको भी माया के जाल से अपनी कृपा से निकाल कर सत्तपुरुष राधास्वामी के चरनों में पहुँचाते हैं॥

राधास्वामी दयाल की दया

राधास्वामी सहाय

सार बचन बार्तिक

दूसरा भाग

बचन हुज़ूरी जो कि महाराज परम पुरुष पूरन धनी राधास्वामी साहब ने ज़बान मुबारक से वक़्त सतसंग के फ़र्माये और जिनमें से थोड़े से वास्ते हिदायत सतसंगियों के लिखे गये ॥

१—ग्रन्थ साहब में हर जगह और हर शब्द में यह बचन लिखा है कि सतगुरु खोजो पर अफ़सोस है कि कोई सतगुरु को नहीं खोजता, तीर्थों और ग्रन्थों में पच रहे हैं ॥

२—पहिले मुख्य करके सतगुरु से प्रीति करनी चाहिये। जिसका ऐसा अंग है, उसको सब

एक दिन प्राप्त है और जो नाम और सत्तलोक के खोज में लगा है और सतगुरु से प्रीति नहीं है, वह खाली रहेगा। मुख्य प्रीति सतगुरु की है। वह सब से जुदा कर देगी॥

३—अपनी हालत को अपने अंतर में देखते चलना चाहिये कि काम क्रोध आदिक यह सब हमारे बस हैं कि नहीं। अगर नहीं हैं तो अपने अभ्यास में लगे रहना और किसी से वाद विवाद न करना। इस बचन को सदा याद रखना चाहिये॥

४—सतगुरु फ़रमाते हैं कि मेरा और सेवकों का संग परमार्थ का है और जो कोई मन के विकारों में बर्तेंगे, मैं उनका संगी नहीं हो सकता॥

५—कर्म, उपासना, ज्ञान, विज्ञान, यह चार हैं। सो बग़ैर सतगुरु के एक भी हासिल नहीं हो सकता। अगर गुरु पूरे मिलें तो वह जैसा जिसका अधिकार देखेंगे, उस को उसी में लगा देंगे। और जो कोई पाखंडी गुरु मिला तो जैसी चेले की रुचि देखी, वैसा ही उपदेश कर दिया। इस

में फ़ायदा नहीं होता है, बल्कि घाटा, कि फिर वह और कहीं के काम का नहीं रहता ॥

६–ब्रह्मा को जब कबीर साहब ने समझाया और उसको शौक़ हुआ कि सत्तपुरुष का खोज करूँ, पर काल ने बहका दिया। फिर जीव की क्या ताक़त कि बिना मेहर सतगुरु के सत्तपुरुष का खोज कर सके ॥

७–फ़र्माया कि परचा लेने वाला कोई भक्त होवे तो परचा मिले। इस क़दर भक्ति किसी की नहीं है जो परचा देवें। यह जो तुम कर रहे हो, यह नक़ल है। सो चिन्ता की बात नहीं है। अब के ऐसी ही मौज है। ऐसे ही सब को तारेंगे ॥

८–सरन और करनी दोनों के वास्ते प्रेम ज़रूर है। बिना प्रेम के सरन और करनी दोनों नहीं हो सकते ॥

९–जैसे दूध में घी और काठ में आग है, पर बिना प्रकट हुये दूध, घी का काम और काठ, अग्नि का काम नहीं दे सकता है, इसी तरह ब्रह्म

घट में है, फिर जो ब्रह्म कहते फिरे और प्रकट हुआ नहीं तो ब्रह्म अपने को कहना झूठा है ॥

१०–मुख्य गुरु भक्ति है। जब तक यह नहीं होगी, कुछ नहीं होगा। जैसे हो सके, गुरु भक्ति पूरी और सच्ची करना ज़रूर है ॥

११–मालिक तुम्हारे में ऐसे है जैसे फूल में ख़ुशबू। फूल दीखता है, पर ख़ुशबू नहीं दीखती। जिन के नासिका इन्द्रिय है, वह फूल में ख़ुशबू को पहिचान सकते हैं। ऐसे ही जिन को गुरु ज्ञान है, वह मालिक को अंतर में जानते हैं ॥

१२–तुम लोग जो भजन करते हो सो तुम्हारा भजन ऐसा है, जैसे कोल्हू का बैल कि दिन भर चला और रहा घर में, पर अहंकार हो गया कि मैं बारह कोस चला। ऐसे ही तुम्हारे में यह मन रूपी बैल है कि भजन में बैठता है, पर चढ़ता नहीं। इस से अहंकार बढ़ता है कि मैंने दो घंटे भजन किया, पर रस नहीं आता है। जो रस आवे तो अहंकार क्यों होवे? सो जब

तक त्रिकुटी के परे नहीं जाओगे, निर्मल रस नहीं आवेगा ॥

१३–कुल जीव अधिकारी भक्ति के हैं। सो पूरा अधिकार तो भक्ति का भी नहीं है। पर भक्ति में बिगाड़ नहीं है और मालिक को भक्ति प्यारी है, और कुछ प्यारा नहीं है और भक्ति सतगुरु की मंज़ूर है। और किसी की भक्ति से वह राज़ी नहीं है ॥

१४–ऊँट वाले के हाथ में एक ऊँट की नकेल होती है। एक के बाद एक, हज़ारों चले आते हैं। इसी तरह गुरुमुख तो एक ही होता है, उसके प्रताप से बहुत से जीव पार हो जाते हैं ॥

१५–सतसंग पारस है। इसमें जो सच्चा हो कर लगा, वह कंचन हो गया। जैसे पारस के परसे लोहा कंचन होता है और जो अंतर रहा यानी कपट रहा तो वह लोहे का लोहा रहा और सतसंग तो पारस ही है ॥

१६–जो लोग सतसंगी, वक़्त सेवा के, आपस में क्रोध में भर जाते हैं, यह उन को

मुनासिब नहीं है। यह आदत संसारी जीवों की है कि जब उनके किसी काम में विघ्न पड़ा तो वह क्रोध में भर आये। जो ऐसी ही आदत सतसंगी की भी हुई तो वह और संसारी एक हुये। कुछ फ़र्क़ नहीं रहा। सतसंगी को क्षमा होनी मुनासिब है। यह क्रोध काल का चक्कर है। उस को मत धसने दो। जिस वक़्त कोई हट ज़बर करे, उस वक़्त क्षमा करनी चाहिये॥

१७—सुनना और समझना सहज है, क्योंकि बाहर से सुन लिया और समझ भी लिया और अंतर में नहीं धसा तो वह सुनना और समझना वृथा है और अंतर में जो धसेगा तो उसका बरताव भी उसके अनुसार होगा। जो अंतर में होगी, वही बाहर निकलेगी। यह नेम है। सो जो सतसंगी हैं, उनको हर वक़्त विचार रखना ज़रूर है और सतसंगी को हर वक़्त विचार रहता ही है, क्योंकि वह हर वक़्त अपने स्वामी को सिर पर रखता है और बिना सतगुरु स्वामी को सिर पर रक्खे हर वक़्त विचार का ठहरना बनता

ही नहीं है यानी बिना हिमायती के यह मन बैरी विचार कब आने देता है ? इससे तुमको मुनासिब है कि हर वक़्त सतगुरु स्वामी और शब्द को अपने सिर पर रखते रहो। इस को कभी मत बिसारो ॥

१८—जैसे सब की चाह संसारी पदार्थों में जन्म जन्म से चली आती है, ऐसे ही परमार्थ की भी होवे, तब कुछ काम इस जीव का बने ॥

१९—यह संसार जो कि उजाड़ है, इस को बस्ती समझ रक्खा है और उसके पदार्थ जो कि नाशमान हैं, उनको सत्त जानते हैं और जो इस में सत्त है, उस की ख़बर भी नहीं है तो क्योंकर इस जीव का गुज़ारा होवे और कैसे सतसंग में लगे ॥

२०—जीव को संतों के संग का अधिकार ही नहीं है। कुछ काल सतसंग करे तो अधिकारी यहाँ के बैठने का होवे और बहुतेरा समझाओ पर अपनी बुद्धि की चतुराई पेश किये बिना मानता ही नहीं है और यहाँ बुद्धि का काम

नहीं है। यह मार्ग तो प्रेम का है। सो प्रेम, बिना सतसंग के, कैसे आवे? और सतसंग में काल लगने नहीं देता है। फिर जीव भी लाचार है। इसका बस नहीं है॥

२१—संतों से ऐसी प्रीति करनी चाहिये जैसे जल मछली की प्रीति है। ऐसी प्रीति जिसने संतों से करी तो वह उनका प्यारा हुआ और वही जगत से न्यारा हुआ॥

२२—मन को और गुरु को सनमुख खड़ा करे। उस वक़्त जो गुरु का हुक्म माना तो मन को मारा और जो मन के कहने में चला तो गुरु से बेमुख हुआ। सो जिसको दर्द है, वह तो गुरु को ही मुख्य रक्खेगा और जिसको ख़ौफ़ नहीं है, वह मन की लहरों में बहेगा॥

२३—संतों की बानी का पाठ करने और याद करने से कुछ नहीं होगा, जब तक कमाई न होगी। इस वास्ते जो बचन सुनो, उसकी कमाई करो, नहीं तो सुनना और समझना बे-फ़ायदा है॥

२४—जैसे आज कल के जीवों की प्रीति व्रत और तीर्थ और मूर्त्ति में है, उस का चौथा हिस्सा भी सतगुरु के चरनों में नहीं। इस सबब से इनके अंतर में कुछ नहीं धसता है। सुनें तो ऊपर से और दर्शन करें तो ऊपर से, नाम लें तो ऊपर से। जो सतगुरु पूरे मिलें तो सब द्वारों से अंदर में धसावें। बिना सतगुरु के किसी की ताक़त नहीं जो अंतर में धसावे॥

२५—जब तक अपने वक़्त के पूरे गुरु की टेक न बाँधोगे, कभी चौरासी से नहीं बचोगे। जो पिछले संतों के घर के हो और संतों की टेक रखते हो और अपने वक़्त के पूरे सतगुरु पर भाव नहीं है और उनका बचन नहीं मानते हो तो भी चौरासी से नहीं बचोगे, क्योंकि पिछले जो संत हो गये हैं, उनका भी यही हुक्म है कि वक़्त के पूरे सतगुरु की सरन लो तो कारज होगा॥

२६—इस मन मस्त को वही बस करेगा जिसको सच्ची चाह मालिक के मिलने की है। जैसे मस्त हाथी जंगल में फिरता है और जिधर

चाहे उधर चला जाता है, कोई नहीं रोकता है और जब हाथीवान का अंकुस उसके ऊपर लगा, तब वही मस्त हाथी बादशाह की सवारी में आया और सुख से रहने लगा, इसी तरह जो गुरुमुख हैं, वही महल में दख़ल पावेंगे, और जो निगुरे हैं, वह चौरासी जावेंगे। इस से जहाँ तक हो सके, गुरुमुखता करने में मेहनत करनी चाहिये और गुरु पूरा होना चाहिये॥

२७–जो कुछ हम कहते हैं और सुनाते हैं, ब-मूजिब जीवों के अधिकार के है। इस वक़्त कोई पूरा अधिकारी नज़र नहीं पड़ता है। जो बड़े परमार्थी कहलाते हैं, वह सैंकड़ों चेले करते हैं और चाहे गृहस्थी होय, चाहे भेष, विचार माला पढ़ा कर ज्ञानी बना देते हैं। सो ऐसे गुरु और चेले दोनों भर्म में पड़े हैं। उनको सिवाय अहंकार के और कुछ हासिल न होगा और जो गुरु नानक के घर में हैं, उनका यह हाल है कि ग्रन्थ साहब को पोट बाँध कर रख लिया है और आरती उतारते हैं और दंडवतें करते हैं और बहुत रोज़

तक ऐसा किया, पर ग्रन्थ में से यह आवाज़ नहीं आई कि नाम चित्त आवे और सुखी रहो और यह नहीं ख़याल करते हैं कि ग्रन्थ साहब में सतगुरु संत की महिमा है, उनका भी खोज करना चाहिये या नहीं और जो बचन गुरू ने इस वक़्त के वास्ते फ़र्माया है, उसको नहीं मानते। ज़रा पहले विचारो कि जब गुरु नानक प्रकट हुये थे, तब ग्रन्थ कहाँ था और उन्होंने अपने ही बचन से जीवों को समझाया होगा। इस से यह ज़ाहिर है कि ग्रन्थ की ताक़त नहीं है कि संत बना देवे और संत ग्रन्थ के आसरे नहीं हैं और संतों को ताक़त है कि संत बना देवें और जब चाहें तब ग्रन्थ रच लेवें और बहुत से ऐसे हैं कि जिन्होंने सौ सौ बार पाठ किया, पर यह ख़याल में न आया कि ग्रन्थ में क्या बचन लिखा है। ऐसे पाठ करने से कुछ काम न होगा। संत सतगुरु का खोजना लाज़िम है कि जो सब भर्म को मिटावें। सिवाय इसके चौरासी से बचने का कोई उपाय नहीं है॥

२८—संतों का सतसंग ऐसा कल्प-तरु है कि सब बासना दूर कर देता है और कहते हैं कि कल्प-तरु सब बासना पूरी कर देता है, पर आज तक किसी को मिला नहीं। लेकिन सतसंग तो निज कल्प-तरु है। इससे बारम्बार सतसंग करना चाहिये। बहुत न बन सके तो थोड़ा करे, पर सचौटी के साथ करे, कपट से न करे कि उस में कुछ फ़ायदा नहीं है॥

२९-जैसे हीरा मोती को बींधता है, पत्थर को नहीं बींधता है, इसी तरह संतों का बचन अधिकारी को असर करता है, अन-अधिकारी को फ़ायदा नहीं करता, पर जो अन-अधिकारी भी बराबर सतसंग करता रहेगा तो एक रोज़ लायक़ सतसंग के हो जावेगा। पर दिक़्क़त यह है कि उस से सतसंग में ठहरा नहीं जावेगा॥

३०—प्रथम, धुंधुकार था। उस में पुरुष सुन्न समाध में थे, जब तक कुछ रचना नहीं हुई थी। फिर जब मौज हुई, तब शब्द प्रकट हुआ और उस से सब रचना हुई। पहिले सत्तलोक

और फिर सत्तपुरुष की कला से तीन लोक और सब विस्तार हुआ ॥

३१—वह जो पार-ब्रह्म परमात्मा है सो सब जीवों के पास मौजूद है, पर संसार रूपी भौ सागर से किसी को निकाल नहीं सकता है। बजाय निकालने के और रोज़-बरोज़ फँसाता जाता है और जब वही पार-ब्रह्म परमात्मा सतगुरु रूप रख कर उपदेश करता है तो वह संसार के बंधनों से जीव को छुड़ा सकता है। पर लोग ऐसे अंधे हैं कि इस स्वरूप को जो उद्धार करने वाला है, नहीं पकड़ते और ग़ायब का ध्यान करते हैं, सो वह ध्यान उनका क़बूल नहीं होता क्योंकि मालिक ने यह क़ायदा मुक़र्रर कर दिया है कि जो सतगुरु द्वारे मुझ से मिलेगा, उससे मैं मिलूँगा। निगुरे को मेरे दरबार में दख़ल नहीं है। अब जो कोई यह कहे कि जीव संतों का बचन क्यों नहीं मानते हैं, सो सबब उसका यह है कि ख़ौफ़ और शौक़ नहीं है। जिसको मालिक का ख़ौफ़ होगा, उसको शौक़ मिलने का भी होगा। पहिले ख़ौफ़ होना चाहिये।

३२–आज कल के गुरु चेला तो कर लेते हैं और पत्थर पानी में जीव को लगा देते हैं। चाहिये तो यह था कि अपने से प्रीति कराते सो वह क्या करें, उन्होंने आप गुरु से प्रीति करी होती तो वह भी अपनी प्रीति कराते। ऐसे जो गुरु हैं, उनका नाम गुरु नहीं हो सकता है।

३३–जिसको दर्द परमार्थ का और डर चौरासी का है, उसको मुनासिब यह है कि पहले पूरे गुरु को पकड़े, क्योंकि जब तक गुरु से प्रीति न होगी, अंतःकरण शुद्ध नहीं होगा और जब तक अंतःकरण शुद्ध नहीं होगा, तब तक नाम फ़ायदा नहीं करेगा। जैसे किसान जब बीज डालता है तो पहिले खेत को कमा लेता है, जो बे कमाये हुये बीज डाल दे तो कुछ नहीं पैदा होता, इसी तरह हृदय रूपी ज़मीन की कमाई के वास्ते गुरु का प्रेम है। जब तक गुरु का प्रेम नहीं होगा, नाम फ़ायदा नहीं करेगा और आज कल के लोगों का यह दस्तूर है कि नाम का सुमिरन घर बैठे किया करते हैं और गुरु से कुछ मतलब नहीं, सो ऐसे लोग दोनों से ख़ाली रहेंगे, न

गुरु ही मिला और न नाम ही मिले क्योंकि नाम गुरु के इख़्तियार में है सो गुरु से प्रीति नहीं करी, फिर नाम कैसे मिले ?

३४—ब्रह्मा से आदि लेकर जितने देवता हैं और राम और कृष्ण से आदि लेकर जितने अवतार हुये हैं, इन सब का दरजा संतों से नीचा है और संतों का दरजा सबसे ऊँचा है। यह सब कामदार और वज़ीर हैं और संत बादशाह हैं ॥

३५—सतसंग मुख्य है। इसमें पड़े रहने से बहुत से फ़ायदे होते हैं, यहाँ तक कि जैसे पत्थर जो पानी में पड़ा रहता है तो शीतल रहता है, अगरचे अंतर में उसके शीतलता असर नहीं करती है, पर फिर भी जल के बाहर के पत्थरों से बेहतर है। ऐसे जो जीव बाहर से सतसंग में आ बैठते हैं और अंतर में उनके नहीं धसता है तो कुछ हर्ज नहीं है, संसारी जीवों से फिर भी बेहतर हैं। आहिस्ता आहिस्ता अंतर में भी असर होने लगेगा ॥

३६—जब तक स्वाँसा है, गुरु भक्ति करे जाना चाहिये। गुरु भक्ति कुल-मालिक की भक्ति

तो है। और उनसे कुछ न माँगे। उनको इख़्तियार है, जब वह अधिकारी देखेंगे, जो चाहेंगे, सो बख़्श देंगे ॥

३७—सतगुरु को दीनता पसन्द है। जो दीनता सच्ची है तो न मन की चंचलता का फ़िक्र करे और न रास्ते के तोशे का सोच करे। एक सतगुरु की सरन दृढ़ करे और उनकी ओट लेवे, बेड़ा पार है ॥

३८—जिन के जड़ चेतन की गाँठ बँधी है, वह काम क्रोध लोभ मोह अहंकार में बरतते हैं। कभी शील क्षमा संतोष का बरताव हो जाता है, सो भी ऊपरी, अंतर में तो वही रस लेते हैं और जिनकी जड़ चेतन की गाँठ खुली हुई है, उनके कभी काम क्रोध लोभ मोह अहंकार पास भी नहीं आते हैं ॥

३९—मालिक सबके साथ हर वक़्त मौजूद रहता है। अच्छा और बुरा जो कोई काम करता है, सब की बरदाश्त करता है। जब उसकी मर्ज़ी होगी, तब उससे वह काम नहीं करावेगा। और

किसी के कहने से कोई नहीं मानेगा। ना-हक़ क्यों किसी को दुखाना ? जिसको अपने ऊपर सरधा और प्रतीत होवे, उसके समझाने में दोष नहीं है और वही मानेगा॥

४०—कर्मी और शरई और ज्ञानी कभी संतों के बचन को नहीं मानेंगे। यह संसारी चाह वाले और बुद्धि के बिलास वाले हैं। उनको संतों के सतसंग में आना भी मुनासिब नहीं है। और निर्मले संन्यासी ज्ञानी वेदान्ती निहंग और मूरत तीरथ बरत वाले और जो जो वेद शास्त्र पुराण क़ुरान के क़ैदी हैं और परमार्थ का दर्द नहीं रखते, वे सब इसी तरह के लोगों में से हैं। इनसे संतों को सिवाय तकलीफ़ के और कुछ हासिल न होगा, क्योंकि इनको खोज सतगुरु का नहीं है। सिर्फ़ टेकी हैं॥

४१—इस कलियुग में तीन बातों से जीव का उद्धार होगा। एक सतगुरु पूरे की सरन, दूसरे साध संग और तीसरे नाम का सुमिरन और सरवन। और बाक़ी सब झगड़े की बातें हैं। इस

वक़्त में सिवाय इन तीन बातों के और कामों में जीव का अकाज होता है ॥

४२—यह जीव संसार में वास्ते तमाशा देखने के भेजा गया था, पर यहाँ आन कर मालिक को भूल गया और तमाशे में लग रहा। जैसे लड़का बाप की उँगली पकड़े हुये मेला देखने को बाज़ार में निकला था सो उँगली छोड़ दी और मेले में लग गया सो न मेले का आनन्द रहा और न बाप मिलता है, मारा मारा फिरता है, इसी तरह से जो अपने वक़्त के सतगुरु की उँगली पकड़े हुये हैं, उनको दुनिया में भी आनन्द है और उन का परमार्थ भी बना हुआ है और जिनको वक़्त के सतगुरु की भक्ति नहीं है, वह यहाँ भी दर-बदर मारे मारे फिरते हैं और अंत को चौरासी में जावेंगे ॥

४३—जो शब्द का रस चाहे तो मुनासिब है कि एक वक़्त खाना खावे और जो हर रोज़ दो या तीन बार खाना खावेगा, उसको शब्द का रस हरगिज़ नहीं आवेगा ॥

४४–ज़िन्दगी वही सुफल है जो सतगुरु सेवा और मालिक के भजन में लगे और धन वही सुफल है जो संत सतगुरु और साध की सेवा में ख़र्च होवे और लड़के बाले और कुटुम्बी इसके वही हैं, जो परमार्थ में संग देवें ॥

४५–जो सतगुरु की प्रीति और उनका निश्चय करेगा, उसको शब्द भी मिलेगा और जिसको सतगुरु की प्रतीत नहीं है, वह शब्द से भी ख़ाली रहेगा ॥

४६–काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार की जड़ और आशा तृष्णा की मैल अंतःकरण में है, सो यह मैल सतगुरु की प्रीति से जावेगी और प्रेम आवेगा। जब प्रेम आया, तब ही काम पूरा हुआ ॥

४७–सेवक का धर्म यह है कि सिवाय सतगुरु के और सब की सरन तोड़ देवे और सतगुरु को ही मुख्य करके पकड़े और जो सेवक ऐसा नहीं करेगा तो सतगुरु अपनी दया से आप पकड़ेंगे, पर उसको ज़रा तकलीफ़ होगी ॥

४८–चैतन्य की सेवा से चैतन्य को पावेगा और जड़ की सेवा से जड़ को पावेगा। सो सिवाय सतगुरु के और सब जड़ हैं। एक संत सतगुरु ही इस संसार में चैतन्य हैं। इस वास्ते उनकी सेवा सब जीवों को जो अपना भला चाहते हैं और चैतन्य से मिला चाहते हैं, करना चाहिये॥

४६–पहिले गुरुमुखता होनी चाहिये, बाद इसके नाम मिलेगा और जब तक गुरुमुखता नहीं होगी, नाम कभी नहीं मिलेगा। इस वास्ते सब को चाहिए कि गुरुमुख होने में मेहनत करें॥

५०–संसारी जो अपनी तमाम उम्र संसार में खो देते हैं, अंत काल अकेले जाते हैं। मरघट तक उनके सब संग रहते हैं। अंत काल का कोई संगी नहीं है। और जो सतसंगी हैं, उनके सत-गुरु सदा संग रहते हैं। और यह बात ज़ाहिर है कि अकेले तकलीफ़ होती है यानी बिना दो के संसार में भी और अंत को भी तकलीफ़ रहती है। यहाँ तो स्त्री और पुत्र इनके संग आराम रहता है और अंत को गुरू सहाय होते हैं। इस

देह धरे का यही फल है कि सतगुरु का संग बारम्बार करे कि अंत को फिर तकलीफ़ न होवे। जो बाहर से न बने तो उनको अपने अंतर में सदा संग रक्खे॥

५१–जैसे बाचक ज्ञानी बिना प्रेम के ख़ाली फिरते हैं, ऐसे ही सतगुरु भक्त भी बिना प्रेम के ख़ाली रहता है। जब तक प्रेम नहीं आवेगा, तब तक कुछ प्राप्ति नहीं होगी। पर इतना फ़र्क़ है कि बाचक ज्ञानी ने तो प्रेम की जड़ ही काट दी, उसको कभी कुछ हासिल नहीं होगा और सतगुरु भक्त को एक रोज़ प्रेम की बख़्शिश ज़रूर होगी॥

५२–नाम यानी शब्द बड़ा पदार्थ है। पर किसी को इसकी क़दर नहीं है, क्योंकि नाम की यह महिमा है कि सोते पुरुष को पुकारो तो वह जाग पड़ता है और जो जागता पुरुष है, उसको नाम लेकर पुकारो तो क्यों नहीं सुनेगा? पर वह तुम्हारी पकाई और सचाई देखता है और जब तुम्हारी आँखों को देखने के लायक़ और हृदय को अपने बैठने के लायक़ करले, तब प्रकट होवे।

इतने में जो घबरा जावे और छोड़ देवे तो वह भी चुप हो रहता है और जिसने यह समझ लिया कि जब तक स्वाँस आता जाता है, तब तक नाम को नहीं छोड़ूँगा, उसको फिर वह ज़रूर मिलता है ॥

५३–जिसको सतगुरु मिले और उन्हों ने अपनी कृपा से नाम और उसका भेद बख़्शा तो उसको चाहिये कि उसकी कमाई करे और सतगुरु की प्रीति और प्रतीत बढ़ाता जावे और जो न हो सके तो अपने मन में पछतावे और जतन करता रहे और किसी के समझाने का इरादा न करे। समझाने वाला अपना फ़िक्र आप कर लेगा। इसको चाहिए कि यह अपना फ़िक्र करे ॥

५४–इस कलियुग में संतों ने बजाय पुराने तीर्थों के और व्रतों के यह तीर्थ और व्रत मुक़र्रर किये हैं यानी सतगुरु की आज्ञा में बर्तना तो व्रत और सतगुरु और साध का संग तीर्थ। इस से जीव को फ़ायदा होगा और पुराने तीर्थ व्रत करने से सिवाय अहंकार के और कुछ हासिल नहीं होगा ॥

५५—यह मन बतौर मस्त हाथी के है, जिधर चाहता है उधर चला जाता है और जीव को संग लिये फिरता है। जंगल के हाथी के लिये तो हाथीवान दुरुस्त करने को ज़रूर है और इस मन रूपी हाथी को सतगुरु ज़रूर हैं। जब तक सतगुरु का अंकुस इस पर न होगा तब तक इसकी मस्ती नहीं उतरेगी। इस जीव को जो परम पद की चाह है तो सतगुरु करना ज़रूर है। बिना सतगुरु के कभी परम पद हासिल न होगा। इस बचन को सच्चा मानो नहीं तो चौरासी जाओगे॥

५६—संत सतगुरु का मत सर्गुन और निर्गुन दोनों से न्यारा है और जो रचना सत्तलोक में है, वह भी सत्त और उसका रचनेवाला सत्तपुरुष भी सत्त है॥

५७—जो संत या फ़क़ीर हैं, वह ज़ाते-ख़ुदा यानी स्वरूप मालिक के हैं। जो उनकी ख़िदमत करेगा और उनकी मुहब्बत और प्रतीत करेगा, वह भी ज़ाते-ख़ुदा हो जावेगा॥

५८—गुरुमुख होना मुशकिल है। शब्द का खुलना मुशकिल नहीं है। सो सतगुरु की मौज से होगा। बिना उनकी दया के कुछ नहीं हो सकता॥

५९—दसवाँ द्वार जो इस शरीर में गुप्त है, सो इस कलियुग में संतों ने उसके खुलने का उपाव शब्द के रास्ते से रक्खा है। और सब मत वालों का दसवाँ द्वार, और रीति से खुलना गुप्त हो गया॥

६०—दोनों काम नहीं बन सकते। भक्ति गुरु की करोगे तो जगत से तोड़नी पड़ेगी और जगत से रक्खोगे तो भक्ति में कसर पड़ेगी। सो इस बात का नेम नहीं है। जिनके अच्छे संस्कार हैं और सतगुरु की कृपा है, उनके दोनों काम ब-ख़ूबी बनते चले जावेंगे, कुछ दिक़्क़त नहीं पड़ेगी और जिन के संस्कार निकृष्ट हैं, उनसे एक ही काम बनेगा॥

६१—जिसको शब्द मार्ग की चाह है और उसको उसके भेदी संत मिल जावें तो मुनासिब

है कि तन, मन, धन उनके अर्पण कर दे और उनसे ज़रा दरेग़ न करे ॥

६२—नाम रसायन के बराबर कोई रसायन नहीं है। जिसने यह रसायन बना ली, उसके पास सब रसायन हाथ बाँधे खड़ी हैं। जब ख़ाविंद क़बज़े में आ गया तब जोरू कहाँ जा सकती है ?

६३—मुक्ति में बड़े भेद हैं। कोई तीर्थ और व्रत करना, इसी में मुक्ति समझते हैं। कोई जप तप को मुक्ति रूप जानते हैं। कोई त्याग में मुक्ति मानते हैं। सो यह सब ग़लती में पड़े हैं। संत यह कहते हैं कि जब तक सुरत अपने निज मुक़ाम को न पावेगी तब तक मुक्ति का होना सही नहीं है ॥

६४—वेद से आदि लेकर जितने शास्त्र हैं और षट दर्शन और चान्द्रायण से आदि लेकर जितने व्रत हैं और जितना पसारा इस लोक का है, सब नाश होंगे। एक संत और सेवक बचेंगे। इस से लाज़िम है कि संसारी प्रीतों को कम करें

और संतों से प्रीति बढ़ावें। उनकी प्रीति सुख की दाता है और धन और मान और स्त्री और पुत्र की प्रीति दुख की दाता है॥

६५—पंडित और भेष से जीव का उद्धार नहीं होगा। जब तक संत दयाल न मिलेंगे, और किसी से इस जीव का उद्धार नहीं होगा। सो जहाँ तक बन सके, संत दयाल का खोज करके उनकी सरन पड़े तो एक ही जन्म में उद्धार है॥

६६—जो संत गृहस्थ में रहते हैं, उन से बहुत से जीव पार होते हैं और जो भेष में होते हैं, उन से उद्धार किसी का नहीं होता। पर जो संत दयाल हैं, वह गृहस्थ ही में रहते हैं॥

६७—मालिक ने यह फ़रमाया है कि साध और प्रेमी जन मेरी देह हैं। जो मेरी सेवा करना चाहें, तो मेरे साधुओं और प्रेमियों की सेवा करें और लोग बावले, पानी और पत्थर पूजते हैं। गुरु भक्ति और सतसंग और साध सेवा जो मुख्य है, सो कोई नहीं करता है॥

६८—इस वक़्त के जीवों के वास्ते पहिले गुरु भक्ति और सतसंग चाहिये। इस के बिना काम नहीं होगा ॥

६६—सतसंग में आ बैठने से कर्म नहीं कटते हैं। सतसंग का जो कर्म है, उसके करने से कर्म कटते हैं ॥

७०—हर कोई नाम का सुमिरन करता है और कुछ भी अंग उसका नहीं बदलता। सबब इसका यह है कि पोथियों का लिखा नाम जपता है। किसी साध का बताया हुआ नाम जपे तो ख़बर नाम के रस की पड़े, क्योंकि संतों ने अपने हृदय रूपी ज़मीन को कमा कर नाम रूपी दरख़्त लगाया है और उसका फल खाते हैं। जो कोई खोजी प्रेमी नाम का, उन के पास जावे, उस को नाम का फल देते हैं ॥

७१—जिनको सतगुरु नादी मिले हैं, उन्हों ने अनहद शब्द सुना है। और किसी को यह मार्ग हासिल नहीं है। इस वक़्त में वही भागवान

है जिसको इस मार्ग की प्रतीत आगई और इस की कमाई में लग गया।

७२–जो सतसंग करे और बचन भी सुने तो मनन भी करना चाहिये ताकि निध्यासन यानी अभ्यास की सीढ़ी पर आ जावे और जो मनन नहीं करेगा तो कुछ फ़ायदा नहीं होगा, जैसे का तैसा बना रहेगा॥

७३–जिसको सतगुरु ताड़ें, उसकी सतसंगियों को सिफ़ारिश करनी मुनासिब है और जिसका वे आदर करें, उसकी उनको भी ख़ातिर करनी चाहिए॥

७४–जो कोई बिना भाव के साध को खिलाता है तो उसका तो फ़ायदा है पर साध का नुक़सान है॥

७५–ज़ाहिर में पूजा करने के वास्ते तो संतों की अकाल मूरत है और गुप्त में जिसका संत ध्यान करते हैं, वह भी अकाल पुरुष है। पर संसार जड़ को छोड़ कर डालियों को पूजता है। सो जड़ भी हाथ नहीं आती और

डालियाँ भी सूख जाती हैं। मतलब डालियाँ पुजवाने से यह था कि एक रोज़ जड़ तक आ जावेगा। पर जीवों ने डालियों को ऐसा पकड़ा कि छुड़ाये नहीं छोड़ते हैं यानी पंडितों के बहकाने से अनेक तरह की पूजा कर रहे हैं और करने लगते हैं। सबब इसका यह है कि इस जीव के संग काल का वकील यानी मन मौजूद है। जो कोई काल का मत इसको समझाता है तो मन भी मदद करता है क्योंकि काल की हद से बाहर नहीं जाता है और जब दयाल का मत संत उपदेश करते हैं, तब काल का वकील मन इसको बहका देता है और संतों के बचन का निश्चय नहीं आने देता है॥

७९–चाह की जड़ काटनी चाहिये क्योंकि जिस बात की यह चाह करता है और वह पूरी नहीं होती तो बहुत तकलीफ़ पाता है। जो काम करे उसकी मौज पर करे। अपना अहंकार न करे। पर इस बचन की बारीकी को समझना चाहिए, नहीं तो करनी से ढीला पड़ जावेगा। यह

बात पूरी जब हासिल होगी, जब मालिक का दर्शन उसको प्रत्यच्छ होगा। बिना दर्शन यह हालत नहीं आवेगी। यह गति संतों की है कि सब में उसको प्रेरक देखते हैं। जगत का तमाशा संतों को खूब दीखता है। दूसरे की ताक़त नहीं है॥

७७–जिन लोगों को गुरु नानक या किसी और संत की टेक है और उनका बचन मानते हैं, उनको गुरु और संत के घर का जान कर उन्हीं से सतगुरु यह कहते हैं कि गुरु नानक या और संत को अपना पिता समझो और उनका बचन मानो। पिता का काम पालन पोषण करने का है। जैसे कि पुत्री को पिता पालता है और सब तरह से उसकी ख़बर लेता है, पर जब उसको पुत्र की चाह होती है, तब उसको पति के हवाले करता है, पिता के घर में पुत्र नहीं हो सकता है, इसी तरह से गुरु नानक और संत कहते हैं कि सतगुरु खोजो, जो प्राप्ति सच्चखंड और सत्त-नाम की चाहते हो। यह कहीं नहीं कहा कि

ग्रन्थ और पोथी की टेक बाँधो तो तुम को सच्च-खंड मिलेगा। इस जन्म में तो संतों के घर के और उनके टेकी कहलाये और जो उनका बचन न माना यानी सतगुरु वक़्त का खोज न किया तो चौरासी में जाओगे। इतना समझाना संतों के घर के जीवों को है। और जो पंडितों के किंकर हुए, वह संतों के घर के न रहे। उनसे कुछ कहना नहीं चाहिये। वे मानें, चाहे न मानें॥

७८–जो दुनियादार हैं उनकी आशक्ति स्त्री और धन में है और उसी में उनको रस आता है। इसी से वह संसारी कहलाते हैं और जिनको अपने सतगुरु के दर्शन और बचन में आशक्ति है और रस मिलता है, उनका नाम गुरुमुख है। सतगुरु की प्रीति करने वाले कम हैं और दुनियादार बहुत हैं। पर जो सतगुरु के सनमुख आये हैं तो वह उनको एक रोज़ गुरुमुख बना कर छोड़ेंगे॥

७९–बाज़े जीव सतगुरु से कहते हैं कि जो तुम सतगुरु पूरे हो तो हम एक तिनका तोड़ दें,

तुम जोड़ दो। सो सतगुरु फ़र्माते हैं कि जिसको तुम ने ब्रह्म माना है, उस से तिनका टूटा हुआ जुड़वाओ। जो वह जोड़ देगा तो हम भी जोड़ देंगे क्योंकि सतगुरु और ब्रह्म एक हैं। पर ब्रह्म की ताक़त नहीं है कि टूटा हुआ तिनका जोड़ देवे या मुर्दे को जिला देवे। और जो सतगुरु से प्रीति करेगा और सरधा लावेगा तो उसका तिनका भी जोड़ देंगे और मुर्दे को भी जिला देंगे क्योंकि जो संसारी हैं, वह मुर्दे हैं और जिनको सतगुरु वक़्त से प्रीति है, वही ज़िन्दा हैं और उन्हीं का तिनका टूटा हुआ जुड़ा है॥

८०—मुरीद नाम मुर्दे का है कि जिस तरह गुरु कहें, उसी तरह करे। अपनी अक़्ल को पेश न करे। सो जब तक यह हालत न आवे, तब तक अपने को ज़िन्दा और संसारी जाने और मुर्दा न माने। पर मेहनत करे जाय और बचन माने यानी सतगुरु की सेवा और सतसंग और भजन करता रहे और उनके चरणों में प्रीति और प्रतीत बढ़ाता रहे, एक दिन मुरीद हो जावेगा॥

८१–जो कोई सतसंगी से यह सवाल करे कि तुमको संतों का निश्चय किस तरह आया और वक़्त के सतगुरु को कैसे पूरा जाना तो जवाब यह है कि पिछले संजोग से निश्चय आया, कुछ साधना नहीं करनी पड़ी, बचन सुनते ही निश्चय आया, जैसे चकोर को चन्द का और पतंग को दीपक का ॥

८२–जिस माया ने जगत को बस कर रक्खा है, उसको संतों ने ही बस किया है। जो माया से अलग होना चाहे, उस को चाहिये कि संतों का संग करे और ताड़ मार निंदा स्तुति जो कुछ होवे, सब को सहे। तब साध बनेगा। और जिसको बरदाश्त बिल्कुल नहीं है यानी जब तक ख़ातिरदारी के बचन कहे जावें, तब तक ख़ुशी से रहे और जब गढ़त के बचन कहे जावें, तब ही कमर बाँध के छोड़ कर चलने को तैयार हो तो इस तरह से कभी साध नहीं बनेगा। साध जब ही बनेगा जब हर एक बात की बरदाश्त करेगा ॥

८३–जब तक संतों के हुक्म के मुआफ़िक़

कर्म नहीं करेगा, मन निर्मल नहीं होगा और जब तक सतगुरु और शब्द की उपासना नहीं करेगा, चित्त निश्चल नहीं होगा। जब यह दो दरजे भली प्रकार कमा लेगा, तब ज्ञान का अधिकारी होगा। जब ज्ञान हुआ, तब आवरन दूर हो जायगा। आजकल के ज्ञानियों का यह हाल है कि उनको इस बात की ख़बर भी नहीं कि हमारा मन निर्मल और चित्त निश्चल हुआ है या नहीं। पोथियाँ पढ़ कर ज्ञानी हो गये और जो जीव उनके पास जाता है, उसको ज्ञान का उपदेश करते हैं। यह नहीं जानते कि इस कलियुग में कोई जीव ज्ञान का अधिकारी नहीं है। इस से मालूम हुआ कि वे अन्धे हैं। आप चौरासी जावेंगे और जो उनके क़ाबू में आवेगा, उसको भी ले जावेंगे। जिसको चौरासी से बचना होवे, वह संतों का बचन माने और अपनी नर देही को सुफल करे क्योंकि मुश्किल से हाथ आई है। इसको वृथा नहीं खोना चाहिये और जो नहीं माने तो इख़्तियार है॥

८४–बग़ैर संत सतगुरु वक़्त के कुछ

हासिल नहीं होगा। जब यह सतगुरु वक़्त की सेवा करे और उनको प्रसन्न करे, तब कुछ हासिल होगा। और जो नाम को यह चाहता है, चाहे जिस क़दर मेहनत करे पर हासिल नहीं होगा। जब सतगुरु प्रसन्न होंगे, तब नाम मिलेगा॥

८५–जैसे आग पर काँच नहीं ठहरता है, इसी तरह से यह नर देही भी संसार के भोगों की आग में दिन रात पिघलती जाती है। बड़ भागी वह जीव हैं, जिनको सतगुरु पूरे मिल गये और उनकी संगत में अपना तन मन धन ख़र्च कर रहे हैं॥

८६–साध के संग से पाव घड़ी में कोटि जन्म के पाप कट जाते हैं, पर होवे साध पूरा। पहिले तो सच्चा साध मिलना मुश्किल है और जो साध भी सच्चा भाग से मिला तो संग नहीं किया जाता। जब तक संग नहीं होगा, प्रतीत नहीं आवेगी और जो प्रतीत नहीं आई तो फिर प्रेम कहाँ से आवेगा और जब यह दो बातें नहीं

तो फिर दया कैसे आवेगी और जो साध सतगुरु की दया नहीं प्राप्त हुई तो फिर कारज भी पूरा नहीं होगा। इस से मुख्य संग है। जो एक जन्म इसका सतगुरु के खोज में गुज़र जावे तो कुछ नुक़सान नहीं है, बल्कि बहुत फ़ायदा है क्योंकि नर देही का भागी हो गया और तीर्थ व्रत मूर्ति पूजा चेटक नाटक सिद्धि शक्ति नेम आचार कर्मकांड ब्रह्म ज्ञान के झगड़ों में पड़ गया तो नर देही भी हाथ से गई और चौरासी के दुख फिर भुगतने पड़े क्योंकि जब ब्रह्मा विष्णु महादेव और तेंतीस कोटि देवता जिनका यह पसारा फैलाया हुआ है, सब जन्म मरन में पड़े हैं तो जीव जो कि असमर्थ है, कैसे बच सकता है? पर जो कहीं भाग से सतगुरु पूरे मिल जावें तो यह सब जिनका नाम ऊपर लिखा गया है, जन्म मरन में पड़े रहेंगे, पर वह जीव अपने निज स्थान को सतगुरु की मेहर से पा जावेगा। जो इस बचन की प्रतीत नहीं है तो संतों के बचन की गवाही लेलो और जो न इस बचन की प्रतीत है और न संतों के

बचन पर निश्चय है तो चौरासी का रास्ता खुला हुआ है, चले जाओ ॥

८७—ग्रन्थों और पोथियों में जो नाम लिखा है, उसके पढ़ने और जप करने से कुछ हासिल नहीं होगा। नाम का रास्ता साध के संग से प्राप्त होगा। पर यह कहना उनके वास्ते है, जो खोजी हैं। संसारियों के वास्ते यह उपदेश नहीं है ॥

८८—संसार के बंधनों की जड़ अहंकार है। जैसे माला में मुख्य सुमेर है, जब सुमेर को पकड़ लिया तो कुल दाने माला के हाथ आगये और जो उस में से सूत को निकास लिया, तब सब दाने अलग हो गये, इसी तरह जिनके ऊपर सतगुरु की कृपा है, उन्हों ने अहंकार की जड़ काट दी है और सब संसार के भोगों की बासना को हटा कर केवल एक सतगुरु वक़्त से अपना रिश्ता लगा लिया है। उन्हीं की नर देही सुफल है। और जिनको यह बात हासिल नहीं है तो वह मनुष्य की सूरत हुए तो क्या, पशु हैं। और यह

बचन सतसंगी के वास्ते हैं। दुनियादार बजाय मानने के झगड़ा करने को तैयार होंगे ॥

८९—जगत के जीवों का हाल क्या कहा जावे और उन से क्या कहें जब कि स्वामी और सेवक में कोई बिरला स्वामी निरलोभी होगा और कोई बिरला ही सेवक निरलोभी निकलेगा। यह बात क़ाबिल याद रखने के है ताकि अपनी बृत्ति की परख होती रहे ॥

९०—सतगुरु की सेवा और शब्द की कमाई से हौंमैं रूपी मैल को दूर करना चाहिये। तब मालिक राज़ी होगा। ख़ुलासा यह है कि अहंकार को खोना चाहिये और दीनता हासिल करनी चाहिये क्योंकि वह तो दीन दयाल है, जब जीव दीन हुआ, तब ही वह दयाल हुआ और तब ही काम पूरा हुआ, पर दीनता का आना मुश्किल है ॥

९१—जो अपने वक़्त के सतगुरु के हुक्म के ब-मूजिब कर्म और उपासना करेगा, उसको कुछ फ़ायदा होगा और जो पंडितों के बहकाने में आ कर वेद पुराण के कर्म करेगा, उसका बिगाड़ होगा ॥

९२—गुरु की पूजा गोया मालिक की पूजा है क्योंकि मालिक आप कहता है कि जो गुरु द्वारे मुझको पूजेगा, उसकी पूजा क़बूल करूँगा और जो गुरु को छोड़ कर और और पूजा करते हैं, उनसे मैं नहीं मिलूँगा। जो कोई यह कहे कि गुरु की पहिचान बताओ तो हमको यक़ीन आवे, तब हम गुरु की पूजा करें तो उससे यह सवाल है कि तुम जो मालिक की पूजा करते हो, उसकी पहिचान बताओ कि तुमने उसकी पहिचान कैसे करी है, जो मालिक की पहिचान है, वही गुरु की पहिचान है क्योंकि हरि गुरु एक हैं, उन में भेद नहीं, पर हरि की पूजा करने से हरि नहीं मिलेगा और सतगुरु की पूजा और सेवा करने से हरि मिल जावेगा। इतना ग़ौर कर लेना चाहिये। और जो कोई यह कहे कि जब हरि गुरु एक हैं तो हम हरि की ही पूजा न करें, गुरु की पूजा क्या ज़रूर है ? सो यह बात नहीं हो सकती है। पहले भक्ति सतगुरु की करनी पड़ेगी, तब वह मिलेगा। यह क़ायदा उसने आप मुक़र्रर किया

है कि जो गुरु द्वारे मुझ से मिलेगा उससे मैं मिलूँगा, निगुरे को मेरे यहाँ दख़ल नहीं है और गुरु पूरा चाहिये ॥

६३–जो जीव को पूरा गुरु मिल जावे और उन पर प्रतीत आ जावे और उनकी भली प्रकार दीनता करे तो आज इस जीव को वह पद प्राप्त हो सकता है जो ब्रह्मा विष्णु महादेव से आदि लेकर जितने हुए, किसी को नहीं मिला और न मिल सकता है ॥

६४–निंदा और स्तुति दोनों के करने में पाप होता है क्योंकि जैसा कोई है, वैसा बयान नहीं हो सकता है। इससे मुनासिब यह है कि स्तुति करे तो अपने सतगुरु की और निंदा करे तो अपनी। इसमें अपना काम बनता है। और किसी की निंदा स्तुति में वक़्त खोना है। पर एक जगह के वास्ते मना नहीं है कि कोई अपना है और किसी के बहकाने में आ गया है या आया चाहता है, उस से कह देना ज़रूर है कि यहाँ से तुम को फ़ायदा नहीं होगा, यह जगह धोखे की

है। इसमें पाप नहीं है। पर हर एक से कहना ज़रूर नहीं॥

९५–जब तक सुरत अपने निज स्थान को न पावेगी, सुखी नहीं होगी। इस वास्ते मुनासिब है कि सब झगड़े छोड़ कर अपने घर का फ़िक्र करे, क्योंकि इस नर देही में घर का रास्ता मिल सकता है। अब के चूके ठीक नहीं है॥

९६–जब तक वक़्त गुरु की सेवा और नाम का भजन सुमिरन न करेगा, तब तक नाम किसी तरह से प्राप्त नहीं होगा। इस वास्ते मुनासिब है कि जिस क़दर हो सके वक़्त गुरु की सेवा तन मन धन से करे तो एक रोज़ उनकी कृपा से सब की प्रीति हट कर एक सतगुरु की प्रीति आ जावेगी। फिर यह सूरत हो जावेगी कि चाहे कैसी ही तकलीफ़ और आफ़त आवे, उसको दुख नहीं होगा। और जो सामान ख़ुशी मुयस्सर आवे तो उसमें हर्ष नहीं होगा। जब ऐसी हालत हो गई तो जीते जी मुक्ति को प्राप्त हो गया। अब क्या करना बाक़ी रह गया?

९७–जिस किसी को ख़ौफ़ मरने का और चाह मुक्ति की होगी, उसी को सतसंग और सतगुरु प्यारे लगेंगे और जिस को चाह दुनिया की है और डर मरने का नहीं है, उससे सतसंग में नहीं आया जावेगा और न सतगुरु से प्रीति करी जावेगी ॥

९८–नाम तो संसार जप रहा है, कोई ख़ाली नहीं है, पर फ़ायदा किसी को नहीं होता है। इसका सबब यह है कि सतगुरु द्वारा नाम नहीं लिया है। मन मत नाम जपते हैं ॥

९९–जो जीव संतों के सतसंग में आ गया और भेद भी संत मार्ग का ले लिया, पर यह ऐसा है जैसे बीजक का सुनाना। जब तक अपनाया नहीं जायगा तब तक नाम का धन नहीं मिलेगा ॥

१००–जब कोई जीव सतसंग में आता है तो उसको संत परख लेते हैं कि उसको कितना क़र्ज़ा काल का देना है। जो देखा कि इसका क़र्ज़ा थोड़ा है और इस जन्म में अदा हो सकता है तो उस को संत चरनों में लगाते हैं और जो देखा

कि अभी काल का खाजा है तो उसको नहीं लगाते हैं। पर संतों के सन्मुख आने से उसके बे-शुमार कर्म कट जाते हैं और आगे को उसे अधिकारी बनाते हैं॥

१०१–अहंकार के मैल को निकालना पहिले ज़रूर है। आज कल बाज़े जीव अपनी समझ से काम तो वही करते हैं कि जिसमें नाम की प्राप्ति होवे और अहंकार का मैल जावे, पर स्वतंत्र यानी अपने अहंकार के संग करते हैं। सतगुरु के आसरे नहीं करते हैं। इससे और अहंकार ज़्यादा होता जाता है यानी मनमुखता करते हैं और सतगुरु को मुख्य नहीं रखते॥

१०२–संतों के मत में मालिक और जीव का अंस अंसी भाव माना जाता है और वेदान्ती केवल ब्रह्म ही मानते हैं, जीव को कुछ भी नहीं गिनते॥

१०३–जिसको सतगुरु की प्रीति है और उन्हीं को चाहता है, वह एक रोज़ निज घर में पहुँच जावेगा और जो सत्तनाम और सत्तलोक

की चाह रखता है और सतगुरु से प्रीति नहीं है, तो वह न सतगुरु को पावे और न सत्तनाम से मिले और वह सतगुरु का संग भी न कर सकेगा।

१०४–संत ज्ञान का खंडन नहीं करते, पर यह कहते हैं कि पहिले अंतःकरण शुद्ध करना चाहिये, तब ज्ञान का अधिकारी होगा। इस वास्ते चाहिये कि बाचक ज्ञानियों से बचा रहे और भक्ति संत सतगुरु की और सुरत शब्द मार्ग की करे जाय। इससे अंतःकरण भी शुद्ध होगा और नाम भी मिल जावेगा॥

१०५–सतसंगियों को मुनासिब है कि जब कोई सेवक यानी गुरु भाई हिम्मत का बचन बोले तो उसकी मदद करें और हजो न करें, क्योंकि जितना वह बचन अपनी ताक़त से ज़्यादा का बोले फिर भी उसकी मदद करना चाहिये। सतगुरु अपनी मौज से उसको निबाह सकते हैं॥

१०६–जैसे पपीहा स्वाँति की बून्द के वास्ते तड़पता है और मालिक उसकी तड़प को सुन कर मेघ को हुक्म देता है कि अब जाकर बरसो

और उसकी तड़प को बुझाओ तब मेघ आन कर बरसते हैं, इसी तरह से जो नाम रूपी अमृत की प्यास रखते हैं और उसकी प्राप्ति के वास्ते तड़प रहे हैं, उनकी तड़प को सुन कर मालिक अन्तरजामी सतगुरु को हुक्म देता है कि तुम जाकर उन जीवों की तड़प को अमृत रूपी बचनों से बुझाओ, तब सतगुरु प्रकट होते हैं और अमृत रूपी बचन सुना कर जीवों की तड़प को बुझाते हैं। मालिक आप उनकी आग को नहीं बुझा सकता है। इस से सतगुरु की महिमा ज़बर है और बड़-भागी वही जीव हैं जिनको सतगुरु वक़्त के मिल जावें और उनके ऊपर निश्चय आजावे। उन्हीं की नर देही सुफल है॥

१०७—शब्द द्वारा यह जीव बंद में आन पड़ा है और जब तक शब्द भेदी गुरु उसको नहीं मिलेंगे, तब तक अपने निज स्थान को नहीं जावेगा क्योंकि शब्द के ही रास्ते से यह चढ़ कर पहुँच सकता है। और कोई रास्ता इस बंद से निकलने का नहीं है॥

१०८–बाज़े लोग सतसंग में आते हैं, पर कपट लिये हुये आते हैं। बाहर से बातें बहुत बनाते हैं, पर अंतर में उन के भक्ति ज़रा भी नहीं है। सो यह बात ना-मुनासिब है। संसार में चाहे कपट से बरते, पर सतगुरु के संग निष्कपट हो कर बरतना चाहिये। चाहे थोड़ी प्रीति होवे, पर सच्ची होवे तो एक रोज़ पक जावेगी और मालिक प्रसन्न होगा और कपट की भक्ति चाहे जितनी करो, क़बूल नहीं होती है॥

१०९–जब आँधी का ग़ुबार होता है तो कुछ नहीं दीखता है। इसी तरह पंडित और भेखों को जिनको संसार परमार्थी और बड़ा जानता है, उनके लोभ रूपी ग़ुबार अंतर में छा रहा है, उनको बिल्कुल ख़बर नहीं है कि परमार्थ किसको कहते हैं। उनसे मालिक कैसे राज़ी होगा? इस वास्ते वह और सब उनके सेवक चौरासी जावेंगे॥

११०–उपदेश करना दुरुस्त है, पर निरपक्ष होकर करना चाहिये, क्योंकि पहिले पहिचान नहीं हो सकती कि संतों के उपदेश का अधिकारी

कौन है, पर उपदेश करने से पहिचान हो सकती है। जो अधिकारी होगा, वह बचन को मानेगा और जो अधिकारी नहीं है, वह तकरार और वाद करेगा। इस से पहिचान हो जावेगी। फिर उस से हठ नहीं करना चाहिये। उपदेश करना बिल्कुल मना नहीं है, क्योंकि जो उपदेश नहीं होगा तो संतों का मत कैसे प्रगट होगा॥

१११–मालिक को दीनता प्यारी है। मुनासिब यह है कि पहिले वह काम करना कि जिससे दीनता आवे और यह संतों के संग से हासिल होगी। पंडित और भेष के संग से जो सिवाय धन और भोजन के कुछ नहीं चाहते, उनके संग न दीनता आवेगी और न मालिक राज़ी होगा। जिसको यह बात हासिल करनी मंज़ूर होवे, उसको चाहिये कि अपने वक़्त का सतगुरु तलाश करके उनकी भक्ति करे, तब मालिक राज़ी होगा। और जब तक संत दयाल न मिलें तब तक किसी को अपना गुरु न बनावे॥

११२–जिसको नसीहत की जाती है वही

बुरा मान जाता है। इस सबब से मौक़ा देख कर बात करनी चाहिये। और जो कोई न माने तो उसके साथ हठ करना मुनासिब नहीं है और उसके क़ायल करने का इरादा नहीं करना चाहिये॥

११३-सतगुरु की पहिचान उस को होगी जो संसार की तापों में तप रहा है और जो उन तापों को सुख रूप जानता है, वह कभी सतगुरु को नहीं पहिचान सकता है और मुख्य पहिचान वह है जो सतगुरु आप बख़्शें, इस से बढ़ कर कोई पहिचान नहीं है॥

११४-संत फ़र्माते हैं कि यह कुछ ज़रूर नहीं है कि जिसका आदि होवे उसका अंत भी होवे यानी संतों ने मौज से ऐसी रचना भी रची है कि जिसका आदि है पर अंत नहीं है॥

११५-नाम दो प्रकार का है। वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक। ध्वन्यात्मक का फल बहुत है और वर्णात्मक का थोड़ा। जिसको डर चौरासी का है, उसको मुनासिब है कि ध्वन्यात्मक नाम का प्राप्ति वाला सतगुरु खोजे तो चौरासी के चक्कर

से बचेगा और जो वर्णात्मक नाम में रहे तो उनकी चौरासी नहीं छूटेगी ॥

११६–सब काम छोड़ कर एक अपने वक़्त के सतगुरु का हुक्म मानना चाहिये और उसके मुआफ़िक़ अमल करना चाहिये। इसमें इसका काम बनेगा। सब का ख़ुलासा यह है ॥

११७–जैसे संसार के पदार्थों का यह जीव मोहताज है, ऐसे ही परमार्थ का मोहताज नहीं है और जैसे संसारी पदार्थों के वास्ते दीन होता है, ऐसा नाम के वास्ते दीन भी नहीं होता है और जो कभी दीन भी होता है तो कपट के साथ। पर सतगुरु अंतरजामी हैं, वह इस तरह कब नाम की बख़्शिश करते हैं? और सबब सच्ची दीनता न आने का यह है कि यह जीव बे-ग़रज़ है। सच यह है कि जब तक यह जीव सतगुरु के सामने सच्चा दीन न होगा, तब तक जो मालिक भी उसको तारना चाहे तो नहीं तार सकता है ॥

११८–जीव जो बाहरमुख हैं, वह अंतर का हाल नहीं जानते और जब तक अंतरमुख

उपासना शब्द की न होगी, तब तक कारज नहीं सरेगा। बाहर सतगुरु की उपासना और सतसंग, और अंतर में शब्द की उपासना, दोनों बराबर करनी ज़रूर हैं॥

११६—जो वेद के मत को मानते हैं, उन को वेद के स्थान की प्राप्ति भी बिना सतगुरु वक़्त के नहीं होगी। इससे वक़्त के पूरे सतगुरु का खोज करना ज़रूर चाहिये और उनकी जितनी स्तुति करे, सब मुनासिब है और जब वे भाग से मिल जावें तो उनकी महिमा का वार पार भी नहीं है और जो उन को ब्रह्मा से आदि लेकर जितने हो गये, उन सब से बड़ा कहें तो कुछ हर्ज नहीं है, क्योंकि सब तरह से वक़्त के पूरे सतगुरु की बड़ाई है। जो कि गुज़र गये, हरचन्द वह पूरे थे, पर हम को उन से अब कुछ हासिल नहीं हो सकता है। जो कुछ हासिल होगा, अपने वक़्त के संत सतगुरु से हासिल होगा॥

१२०—कर्म ही भुलाने वाला है और कर्म ही चिताने वाला है। जैसे एक लड़के को दो चार

लड़के बहका कर ले गये और खेल में लगा लिया और फिर वही लड़के जब खेल चुके तब उसको उसके घर पहुँचा गये, इसी तरह कर्म के बस जीव भूला है और कर्म ही के बस चेतता है ॥

१२१–इस वक़्त में सिवाय गुरु भक्ति और सुरत शब्द की कमाई के और कुछ जीव से नहीं बन सकता है और जो कोई और उपाय या जतन करते हैं, वह जैसे बाँबी का ठोकना है, उससे साँप नहीं मारा जावेगा। मुनासिब तो साँप का पकड़ना है सो सतगुरु और शब्द की उपासना से हाथ आवेगा। और जतन से नहीं पकड़ा जावेगा। जो इस बचन को न मानेंगे, वह ख़ाली रहेंगे और उनको कुछ हासिल न होगा। और जो जीव कि उनका उपदेश मानेंगे, वह भी ख़राब होंगे ॥

१२२–संत कहते हैं कि नाम का रस मीठा है, पर कोई लेता नहीं है और मिठाई जो खिलाओ तो जल्दी खा जाता है। सबब इसका यह है। कोई रोगी को मिठाई खिलाओ तो कड़वी लगती

है और असल में मिठाई कड़वी नहीं है, रोग के सबब से कड़वी लगती है तो मालूम हुआ कि जगत रोगी है। अब वह उपाय कि जिस से मिठाई मीठी लगे, करना चाहिये और वह उपाय यह है कि हकीम की सरन लेवे तो वह एक रोज़ इसके रोग को खो देगा और फिर वह मिठाई जो कड़वी लगती थी, मीठी मालूम होगी। और परमार्थ में जो नाम का रस चाहते हैं, उनको मुनासिब है कि सब उपाय छोड़ कर एक सतगुरु की सरन पक्की करें तो वे समर्थ हैं, इस जीव को निर्मल और चंगा कर लेंगे यानी अंतःकरण जो भोगों की बासना से भरा हुआ है और काम क्रोध लोभ मोह अहंकार की कीचड़ में सना हुआ है, उसको सफ़ा कर देंगे और मैल और बीमारी जिसके सबब से नाम का रस इसको नहीं आता है, सब दूर कर देंगे और नाम का रस भी बख़्श देंगे। और जो यह उपाय नहीं किया जावेगा तो चौरासी के दंड का अधिकारी होगा॥

१२३—गुरु और पिता का क्रोध जल के

समान है। जब होवेगा तब फ़ायदा करेगा, जैसे जल हरचन्द गरम होवे, पर जब अग्नि पर पड़ेगा तो उसको बुझा देता है। और दुनियादारों का क्रोध अग्नि के समान है कि जहाँ पड़ेगा, वहाँ आग लगावेगा और उसको जला देगा।

१२४–अपने वक़्त के सतगुरु से ऐसी प्रीति होनी चाहिये, जैसे लड़के की माता से। जब वह अपनी माता का दूध पीता है, उस वक़्त जो कोई छुड़ावे तो कैसा व्याकुल होता है कि सम्हाले नहीं सम्हलता है। और जो गुरु को छोड़ कर चले जावें और उनका ख़्याल भी न करें और स्त्री पुत्र को एक रोज़ भी न छोड़ें और गुरु को महीनों छोड़ दें तो ऐसी प्रीति का क्या ठिकाना है और उनको नाम कैसे मिले और इस संसार से उनका उद्धार कैसे होवे? इस वास्ते जिस को अपना उद्धार मंज़ूर है तो उसको चाहिए कि सतगुरु से पूरी प्रीति करे तो सब काम बनेगा॥

१२५–सतसंगियों को और साधुओं को

जो सतगुरु के चरनों में सतसंग करते हैं, सब लोग यह जानते हैं कि सिर्फ़ रोटी खाने को पड़े हैं, पर यह ख़्याल नहीं करते कि वे चार घंटे छः घंटे रोज़ सतसंग करते हैं और जितना जिस से हो सकता है, भजन भी करते हैं और नींद भर के सोते भी नहीं हैं और चरनामृत और परशादी का आधार रखते हैं। यह कितना बड़ा भाग है ? और दुनियादार पेट भर के खाते हैं और नींद भर के सोते हैं और परमार्थ जानते भी नहीं कि किसको कहते हैं॥

१२६–जिसको सतगुरु के चरनों में ऐसी प्रीति है कि जब तक दूर है, तभी तक दूर है और जब सनमुख आया तब ही मन निश्चल हो गया और ऐसा लग गया कि जैसे मक्खी उड़ती फिरती है और जब शहद मिला, तब ऐसी चिमटी कि नहीं छोड़ती, उसी को ऐसी प्रीति का फल भी मिलता है। और यों तो बहुतेरे आये और चले गये। हरचन्द फ़ायदा उनको भी होता है, पर कम॥

१२७–सतसंगियों की आपस में प्रीति होनी चाहिये और जो ईर्षा रही तो कुछ आनन्द सतसंग का नहीं आवेगा। जो प्रीति होवे तो सतसंग और भजन का आनन्द देखने में आवे॥

१२८–संतों का क्रोध दाती है और संसारियों का क्रोध घाती है, पर इस बात को संसारी नहीं जानते हैं। वह संतों को क्रोधी जानते हैं। यह ख़बर नहीं है कि संतों के क्रोध में भी दात है और मूर्खों की दया में भी घात है॥

१२९–दोस्त और दुश्मन दोनों में मालिक आप बैठा है। फिर दोस्त की दोस्ती पर और दुश्मन की दुश्मनी पर ख़्याल नहीं करना चाहिये। दोनों में मालिक प्रेरक है। पर यह दृष्टि सब की नहीं हो सकती है। जो अपने में मालिक का दर्शन करते हैं, उनकी ऐसी दृष्टि है। और जो कि तुम सतसंग करते हो, तुम को भी ऐसी आदत करना चाहिये कि जिससे विरोध चित्त में न आने पावे। सो यह बात जल्दी हासिल नहीं होगी। जब हर रोज़ सतसंग करोगे और नित्त

अंतरमुख अभ्यास करोगे, तब कोई काल में हासिल होगी ॥

१३०–सकल पसारा आदि से अन्त तक मांस का है, पर इसमें नाम उत्तम है । सो जिन्होंने सतगुरु को मुख्य कर लिया है, वह तो बचेंगे, नहीं तो जैसे और जीवों का मांस पकाया जाता है, इसी तरह उनका मांस चौरासी की अग्नि में पकाया जावेगा ॥

१३१–विषयों की प्रीति में जो कि बारम्बार नर्क की ले जाने वाली है, यह मन दौड़ कर जाता है और नाम और सतगुरु की प्रीति से जो कि सदा सुख देने वाली है, भागता है ॥

१३२–संत करामात नहीं दिखाते हैं । अपने स्वामी की मौज में बरतते हैं और गुप्त रहते हैं । जो स्वामी को प्रगट करना अपने भक्त का मंज़ूर होवे तो करामात दिखावें और जो गुप्त रखना है तो करामात नहीं दिखाते हैं, क्योंकि करामात दिखाये पर संतों को जल्द गुप्त होना पड़ता है और सच्चों का अकाज और झूठों की भीड़ भाड़

होती है। इस वक़्त में करामात दिखाने का हुक्म नहीं है और जो करामात देखने की चाह रखते हैं, वह परमार्थी भी नहीं हैं॥

१३३–हिन्दू और मुसलमान दोनों में जो अंधे हैं, उनके वास्ते तीर्थ व्रत मंदिर और मस्जिदों की पूजा है और जिनको आँख है, उनके वास्ते वक़्त के सतगुरु की पूजा है। हर एक के वास्ते यह बात नहीं है। सिर्फ़ सतसंगी को और जिनको आँख है, उन्हीं को सतगुरु की क़दर होगी। दृष्टान्त–एक शख़्स है कि वह लुक़मान हकीम की तारीफ़ करता है और वक़्त के हकीम की निंदा करता है। इससे मालूम होता है कि उसको बीमारी और दर्द नहीं है। अगर दर्द होता तो वक़्त के हकीम की तारीफ़ करता, क्योंकि लुक़मान चाहे बहुत अच्छा हकीम था, पर अब कोई बीमार चाहे कि उसके नाम से रोग खोवे तो कभी नहीं दूर हो सकता है। जब तक वक़्त के हकीम के पास न जायगा, रोग दूर न होगा। इस तरह से जो दर्दी परमार्थ का है और संसार

के सुख को विष रूप देखता है और मोच्त की चाह रखता है सो वह जब तक कि वक़्त के पूरे सतगुरु के पास नहीं जावेगा, उसको चैन नहीं आवेगा और वही महिमा वक़्त के सतगुरु की जानेगा और जो झूठे हैं, वह तीरथ बरत और मूरत पूजा और पिछलों की टेक में भरमेंगे और सतगुरु की महिमा नहीं जानेंगे ॥

१३४–करनी और दया दोनों संग चलेंगी। दया बिना करनी नहीं बनेगी और करनी बिना दया नहीं होगी और जो दया को मुख्य करोगे तो आलसी हो जाओगे और फिर करनी नहीं बनेगी ॥

१३५–चौरासी लाख जोन भुगत कर जीव को गाय की जोन मिलती है और फिर नर देही मिलती है। इसमें जो जीव से अच्छी करनी बनेगी तो बराबर नर देही मिलती चली जायगी, जब तक कि काम पूरा नहीं होगा सो अच्छी करनी यह है कि अपने कुल की याद करना, क्योंकि जोन बदलती है, पर जीव का कुल नहीं बदलता

है। वह एक ही है यानी सब जीव सत्तनाम बंसी हैं। सो यह बात बिना सतगुरु भक्ति के और कोई जतन से हासिल नहीं होगी॥

१३६–अंत में जिसने जाकर बासा किया, वही बसंत है और वही अच्छा बसंत है और उनको ही हमेशा बसंत है जो चढ़ कर जहाँ सब का अंत है, वहाँ बसे हैं॥

१३७–रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण इन तीनों को छोड़ कर सार गुण जो भक्ति है, लेना चाहिये, जब ज्ञान हासिल होगा और पोथियों के ज्ञान का भरोसा नहीं और जो सतगुरु भक्ति की कमाई करके ज्ञान हासिल होगा, वह सच्चा और पूरा ज्ञान है॥

१३८–सवाल सेवक का सतगुरु से–सुरत शब्द को क्यों नहीं पकड़ती क्योंकि शब्द सारे है और संत कहते हैं कि सब पसारा शब्द का है और सुरत शब्द की अंस है। जवाब सतगुरु का–हक़ीक़त में शब्द सारे है पर जब से सुरत पिंड में उतरी है, तब से बाहरमुख हो गई है और

बाहर शब्द में रच गई है। जो शब्द में नहीं रचती तो संसार का काम किस तरह से चलता ? अब जब तक सतगुरु पूरे न मिलें और उनकी सरन न लेवे, तब तक अंतरमुख शब्द को नहीं पा सकती है। जैसे माता और पिता की सरन लेने से संसार में फँस गई है, ऐसे ही जब सतगुरु की और उनके सतसंग की सरन लेगी, तब इस संसार के जाल से निकलेगी ॥

१३९—इस वक़्त में मन के निर्मल करने के लिए सिवाय सतगुरु और नाम की भक्ति के और कोई उपाय और जुगत नहीं है और जो लोग तीर्थ और व्रत और और जतन वास्ते निर्मल करने मन के कर रहे हैं, सो उनसे कुछ फ़ायदा नहीं होगा। यह सच है कि सतगुरु पूरे का मिलना मुश्किल है, पर खोजी और संस्कारी को सहज में मिल जाते हैं ॥

१४०—कोई मुसलमान नादान ऐसा कहते हैं कि मुर्शिद यानी सतगुरु को किसी से सिज्दा कराना नहीं चाहिये, क्योंकि मुर्शिद को तो सब

में ख़ुदा नज़र आता है, इसलिए ख़ुदा से सिज्दा कराना मुनासिब नहीं है। सो यह उनकी कम-फ़हमी है। मुर्शिद का ख़ुदा दाना है और मुरीद का ख़ुदा नादान है। इस सूरत में नादान ख़ुदा को दाना ख़ुदा का सिज्दा करना वाजिब है और मुर्शिद अपने तईं ख़ुदा नहीं कहते, वह तो अपने तईं बंदा ही मानते हैं। पर मुरीद पर फ़र्ज़ है कि वह अपने मुर्शिद को ख़ुदा माने। जब तक ख़ुदा नहीं मानेगा, काम पूरा नहीं होगा। मौलवी रूम ने भी कहा है।

शेर

चूंकि करदी ज़ाते मुर्शिद रा क़बूल।
हम ख़ुदा दर ज़ातश आमद हम रसूल ॥

यानी मुर्शिद की ज़ात में ख़ुदा और पैग़म्बर दोनों आ गये। यह उपदेश तरीक़त वालों के वास्ते है, शरीअत वालों के वास्ते नहीं है और मालूम होवे कि जिस वक़्त में पैग़म्बर साहब ज़ाहिर हुये थे, उस वक़्त में इन्सान को नजात यानी मोक्ष अपने दरजे की दे सकते थे, पर अब

कुछ नहीं कर सकते हैं। अब इस वक़्त में जिस इन्सान को मुर्शिद कामिल मिलेंगे और वह उनको ख़ुदा मानेगा, तब काम पूरा होगा। और तरह कुछ हासिल नहीं होगा। पुरानी चाल किताबों से या मौलवियों से सीख कर चलाया करें, पर किसी के दिल में इश्क़ पैदा न होगा और जब तक इश्क़ न होगा, वस्ल मुश्किल है। सो यह इश्क़ पूरे सतगुरु की सेवा और निश्चय से हासिल होगा। और कोई जतन इसकी प्राप्ति का नहीं है॥

१४१–पहिले मनुष्य को सीधी सड़क मिलनी चाहिये। फिर मुक़ाम को पहुँच सकता है। और सड़क सीधी बिना सतगुरु पूरे के प्राप्त नहीं होगी सो सतगुरु का तो कोई खोज नहीं करता है, तीरथ मूरत बरत और नमाज़ रोज़ा और हज्ज या विद्या पढ़ने में मेहनत करते हैं। इन कर्मों से सिवा अहंकार के और कुछ फ़ायदा नहीं होगा। और सच्चे रास्ते और सच्चे मुक़ाम का भेद सतगुरु पूरे ही से मिलेगा॥

१४२–जो लोग कि शरीअत यानी कर्मकांड

के बंधुए हैं, वह हमेशा संसार में बँधे हुये रहेंगे, कभी मालिक के दरबार में नहीं जावेंगे और जो सतगुरु वक़्त की सेवा तन, मन, धन से करेंगे, वही सच्चे मालिक के दरबार में दख़ल पावेंगे और सतगुरु आप ही मालिक हैं, जो उनकी सेवा है, वह मालिक की सेवा है और जो सतगुरु को छोड़ कर मालिक को ढूँढ़ते हैं, उनको मालिक कभी नहीं मिलेगा और जो सतगुरु की सेवा में लगे हैं, उनको मालिक मिल गया, जब आँख खुलेगी तब पहिचान लेंगे और जब तक पूरी आँख न खुले, तब तक संत सतगुरुओं के बचन के द्वारे प्रतीत करके सेवा में लगे रहें और सतसंग करते रहें और सतगुरु के चरणों में प्रीति और प्रतीत बढ़ाते रहें, एक दिन सब भेद खुल जावेगा॥

१४३–मुख्य जतन सतगुरु वक़्त की सेवा है। इसी से अंतःकरण शुद्ध होगा। जब अंतःकरण शुद्ध हो गया, तब ही बख़्शिश नाम की होगी। इस वास्ते जो सतगुरु की सेवा में लगे हैं, उन्हीं पर सतगुरु की कृपा है॥

१४४–अंतर और बाहर की सफ़ाई बिना शब्द के नहीं हो सकती है। सो पहिले स्थूल की सफ़ाई होके फिर अंतर की सफ़ाई होगी। इस वास्ते पहिले बाहर का बचन मानना चाहिये और जब तक यह न माना जायगा, तब तक अंतर का शब्द प्राप्त नहीं होगा॥

१४५–भक्ति चार प्रकार की है। तन, मन, धन और बचन से। बचन की भक्ति हर कोई कर जाता है यानी जो पंडित भेख आदिक आते हैं, वह कहते हैं कि आप पूरे संत हैं और आपके समान इस वक़्त दूसरा नहीं है और हार भी चढ़ा देते हैं, पर जब उनको वह हार परशादी होकर दिया जावे, तब गर्दन मोड़ लेते हैं तो मालूम हुआ कि उनका जितना कहना है, वह कपट का है और अपना ब्राह्मण और भेखधारी होने का अहंकार नहीं छोड़ते और सतगुरु को गृहस्थी जानते हैं। ऐसे बचन की भक्ति बिल्कुल झूठी है। सच्ची भक्ति उसकी है कि जिसने तन, मन, धन सतगुरु के अर्पण कर दिया है यानी इन सब

प्रकार से सेवा करता है। और बाक़ी सब कपटी हैं। इनको भाव नहीं आवेगा। यों ही बातें बनाया करेंगे ॥

१४६–संत सतगुरु के सतसंग में जीव का आना मुश्किल है और जो किसी सबब से आ भी गया तो ठहरना मुश्किल है, क्योंकि जिस वक़्त संत वेद पुराण और क़ुरान सब को खंडन करके अपना मत सब से ऊँचा और न्यारा वर्णन करेंगे, उस वक़्त उससे ठहरा नहीं जायगा। कोई खोजी या दर्दी ठहरेगा। क्योंकि वेद मत का भी निश्चय सुनने से आया है, कुछ देखा नहीं है। पंडित और ब्राह्मणों के कहने से प्रतीत करी है। इसी तरह संत बचन की भी प्रतीत करके जिस मुक़ाम को संत कहते हैं, मान लेना चाहिये। पर यह बात खोजी से बनेगी, टेकी नहीं मानेगा ॥

१४७–सतगुरु और सतसंग उसी को प्यारे लगेंगे जो संसार में दुखी है। पर इसका कुछ नेम नहीं है। कोई संसार में दुखी भी है,

पर सतसंग की बिल्कुल चाह नहीं है। परमार्थियों की क़िस्म ही जुदी है। वही परमार्थी हैं, जिनको चाहे संसार का सुख भी भली प्रकार प्राप्त होवे, पर बिना सतगुरु और सतसंग के उस सुख को दुख रूप देखते हैं और संसारी वह हैं कि जो संसार के सुखों को चाहते हैं और उनके न मिलने और छोड़ने में दुखी होते हैं और यह नहीं जानते कि संसार के सुख, सब दुख रूप हैं और आख़िर को धोखा देंगे॥

१४८—इस जीव के मैल दूर करने के लिये सिवाय सतसंग के और कोई उपाय नहीं है। जैसे साबुन में यह ताक़त रक्खी है कि कैसा ही मैला कपड़ा होवे और जब साबुन लगा कर धोया, तुरंत साफ़ हो गया या कि घास का ढेर जमा है और जब उस में एक चिनगी डाल दी, एक छिन में सब भस्म हो जाता है, इसी तरह सतसंग है कि इस में जन्म जन्म के कर्म कट जाते हैं और संस्कार दिन-ब-दिन बदलता जाता है॥

१४९—संतों के बचनों को जो वेद से

मिलाते हैं, वह बड़े नादान हैं। संतों की महिमा आप वेद का कर्त्ता नहीं जानता है। फिर वेद क्या जाने ? और संत किसी के क़ैदी नहीं हैं। जिस वक़्त जो मसलहत और मुनासिब जानते हैं, वही रास्ता जारी फ़रमाते हैं। जो मानेंगे, उनको फ़ायदा होगा और जो नहीं मानेंगे, वह अभागी रहेंगे, क्योंकि दुनिया में भी जिस राजा का राज होता है, वह अपना क़ानून चलाता है। जो उसको मानते हैं, वह फ़ायदा उठाते हैं और जो हुक्म अदूली करते हैं, वह अपना नुक़सान करते हैं और हुक्म अदूली की सज़ा के भागी होते हैं॥

१५०–संत दयाल इस जीव को पुकार पुकार कर कहते हैं कि तू सत्तपुरुष का पुत्र है, ऐसी करनी मत कर जो जम की चोट खानी पड़े। पर यह जीव नहीं मानता है और संतों के बचन की प्रतीत नहीं करता है। वही काम करता है कि जिससे जम की चोट खावे। संतों को इतनी ताक़त है कि चाहें तो इसको ज़बरदस्ती मना सकते हैं और जम को भी हटा

सकते हैं, पर वह अपनी दयालुता का अंग नहीं छोड़ते हैं। सिवाय बचन के और किसी तरह से जीव को नहीं ताड़ते हैं। जो बड़भागी हैं, वह उनके बचन को मानते हैं और जो अभागी हैं, वह नहीं मानते हैं॥

१५१–संतों का मतलब जीव को समझाने और बुझाने से यह है कि यह सब तरफ़ से हट कर एक सतगुरु को ऐसे पकड़े कि जैसे स्त्री पति को पकड़ती है कि फिर दूसरे से उसको ग़रज़ नहीं रहती। पर आज कल के गुरुओं का यह हाल है कि चेला तो कर लेते हैं और उसको उपदेश तीरथ बरत और मूरत का करते हैं, अपनी पूजा नहीं बताते हैं। सबब इसका यह है कि ये लोग गुरुवाई के लायक़ नहीं हैं। उनको गुरु बनाना नहीं चाहिये। यह तो आप ही भरमे हुये हैं और औरों को भी भरमाते और भटकाते हैं। गुरु पदवी सिर्फ़ संतों की है और जीव का उद्धार जब होगा, तब संत सतगुरु के द्वारे होगा। संसारी गुरुओं से उद्धार नहीं हो सकता है। ब्रह्मा, विष्णु,

महादेव और ईश्वर जीव की चौरासी नहीं छुड़ा सकते हैं। पर संत बचा सकते हैं और संतों के सतसंग में वही जीव आवेगा, जो संसार का डरा हुआ और तपा हुआ है। और किसी का काम नहीं, जो संतों के सन्मुख ठहर जावे। जब संतों की महिमा इस तरह पर जीव के चित्त में समा जावे तो फिर पंडित और भेख के फन्दे में नहीं फँसेगा। सिर्फ़ सतगुरु संत की तरफ़ श्रद्धा लावेगा और उन्हीं को पकड़ेगा और यही चाहिये है कि जब तक संत सतगुरु पूरे न मिलें, तब तक उनका खोज करे जाय, जो उनके खोज में जीव की देह भी छूट जाय तो कुछ हर्ज नहीं है, क्योंकि फिर नर देही मिलेगी और संत सतगुरु भी ज़रूर मिलेंगे और जो चाह ज़बर होगी तो इसी जन्म में मेला हो जावेगा और जो पंडित और भेख के जाल में फँस गया तो चाहे संसार में धन पुत्र स्त्री और मान प्राप्त हो जावे, पर चौरासी के चक्कर से नहीं बचेगा और फिर नर देही मिलने का भरोसा नहीं है॥

१५२–गुरुमुख वही है जो सतगुरु के हुक्म में बरते, हुक्म से बाहर न होवे और जब तक ऐसा अंग न होगा, तब तक उस पद को भी नहीं पावेगा। यह बात मुश्किल है। पर जो कोई ऐसी होशियारी रक्खे कि जिस में सतगुरु राज़ी होवें, वही काम करे यानी जो सेवा भी करे तो उसमें रज़ामंदी सतगुरु की मुख्य रक्खे और इतनी पहिचान करता रहे कि मेरी सेवा सतगुरु को पसंद है या नहीं या मेरी नाराज़गी का ख़्याल करके क़बूल कर रहे हैं। जो यह समझ में आ जावे कि इसमें सतगुरु को तकलीफ़ है, सिर्फ़ मेरी हठ से मंज़ूर कर रहे हैं, तो उस सेवा को फ़ौरन छोड़ देवे और जिसका ऐसा अंग है, वही गुरुमुख बनेगा और जिसकी ऐसी हालत नहीं है, उसको मुनासिब है कि सतसंग नेम से करे और बचन को चित्त से सुने और याद रक्खे तो उसका अंग बदलता जावेगा॥

१५३–अहंकार की मैल सब जीवों के हृदय में धरी हुई है और जब तक यह न जावेगी, तब

तक परमार्थ नहीं बनेगा और यह मैल बाहर-मुख उपासना से नहीं जा सकती। इस वास्ते लाज़िम पड़ा कि अंतरमुख उपासना की जावे और इस उपासना का भेद सिवाय पूरे सतगुरु के और कोई नहीं दे सकता है। इस वास्ते हर एक जीव, परमार्थी, को मुनासिब है कि पहिले अपने वक़्त का पूरा सतगुरु खोजे और उनकी सेवा करे, तब काम पूरा बनेगा ॥

१५४–इस जीव के सब बैरी हैं, कोई मित्र नहीं। मन जो तीन गुण से मिला हुआ है, वह भी इस जीव को ऐसे देखता है जैसे बिल्ली चूहे के खाने का इरादा रखती है। सिवाय इसके जो जीव काल के हैं और उसका हुक्म मानते हैं यानी मन के कहने में चलते हैं तो भी काल उन को दुख देता है। इसी तरह सब जीव दुखी रहते हैं। पर जो जीव सतगुरु के हैं, उनके ऊपर सतगुरु की दया है और काल भी उनसे डरता है और उनका सहायक रहता है। इस वास्ते सब को चाहिये कि

सतगुरु वक़्त की सरन लेवें तो यहाँ भी और वहाँ भी उनका बचाव और रचा होगी ॥

१५५–जब कोई शख़्स हज़ार दो हज़ार आदमी भरती करना चाहता है तो हज़ारों उम्मीद-वार जमा होते हैं। पर उनमें से सौ पचास क़ाबिल पसन्द निकलते हैं। और बाक़ी दर्जे-ब-दर्जे कम होते हैं और कोई बिलकुल ना-लायक़ निकलते हैं। इसी तरह से जब संत सतगुरु सत-संग जारी फ़रमाते हैं तो बहुत से जीव अनेक तरह की बासना लेकर आते हैं। जो जो निर्मल बासना परमार्थ की रखते हैं, उनको सतगुरु छाँट लेते हैं और बाक़ी को उम्मीदवार करते हैं और जो भाग्यवान परमार्थ के हैं, वही संतों के सतसंग में ठहरते हैं। बाक़ी आप ही हट जाते हैं, उनसे वहाँ की झटक नहीं सही जाती। क्योंकि सच्ची और निर्मल चाह परमार्थ की नहीं रखते हैं। इस वास्ते संत भी उन पर ज़ोर नहीं करते हैं। आइंदा के वास्ते दया करते हैं ॥

१५६–हज़ारों ब्रह्मा, हज़ारों गोरख, हज़ारों

नाथ और हज़ारों पैग़म्बर, तृष्णा की अग्नि में जल रहे हैं क्योंकि उनको सतगुरु नहीं मिले और अगर कोई यह सवाल करे कि जब ऐसे बड़े बड़ों को सतगुरु की पहिचान नहीं हुई तो फिर जीव कैसे पहिचान सकता है, उसका जवाब यह है कि यह सब अपने अपने अहंकार में रहे, इनको सतगुरु पर निश्चय नहीं आया और इसी सबब से सतगुरु ने आपको इन पर प्रगट नहीं किया, क्योंकि यह रचना के काम के अधिकारी थे और उनसे यही काम लेना मंज़ूर था, अगर उनको सतगुरु पर निश्चय आ जाता तो फिर इनसे रचना का काम नहीं हो सकता था और दुनिया का बिल्कुल बिगाड़ना भी मंज़ूर नहीं है। जो जीव कि संसारी हैं, उनके वास्ते ये लोग पैदा किये गये हैं कि उनकी सम्हाल करें। उनके लिए सतगुरु का उपदेश नहीं है और न वह सतगुरु के उपदेश को मानेंगे और न सतगुरु का भाव उनके चित्त में समावेगा। अब सतगुरु पुकार कर कहते हैं कि जब ऐसे बड़े बड़े जिनका निश्चय हज़ारों जीव

बाँधे हुये हैं, चौरासी के चक्कर और नर्क की आग से न बचे तो फिर जीव कैसे बचेंगे ? पर इस बचन की प्रतीत वही जीव लावेंगे, जिनका भाग परमार्थ का है और चौरासी से छुटकारा होने वाला है, यानी जिनको सच्ची और निर्मल चाह सच्चे मालिक से मिलने की है और जिनके संसारी बासना अनेक तरह की धसी हुई है, वह सतगुरु के बचन की प्रतीत नहीं कर सकते । पर यह सब को मालूम होना चाहिए कि जन्म मरन से बचाने वाले और सदा सुख के स्थान के बख़्शने वाले और निज धाम में पहुँचाने वाले सिर्फ़ संत सतगुरु हैं। और ब्रह्मा, विष्णु, महादेव और अवतार और देवता और पीर, पैग़म्बर और औलिया आप ही निगुरे हैं यानी इनको संत सतगुरु नहीं मिले और न चौरासी के चक्कर से आप बचे और न दूसरे को बचा सकते हैं। जो जो इस बचन का प्रतीत लाकर सतगुरु का खोज करेंगे, वही सतगुरु के अधिकारी जीव हैं और उन्हीं को सतगुरु मिलेंगे

और अपनी दया से उनका काम पूरा बनावेंगे और फिर वही जीव जनम मरन से रहित हो जावेंगे॥

१५७–दो शेर इस जीव के पीछे पड़े हैं। एक काल, दूसरा मन। जब तक ये दोनों न मारे जावेंगे, तब तक परमार्थ नहीं बनेगा, और सिवाय संत सतगुरु के इनका मारने वाला और कोई नहीं है। इस वास्ते जो कोई संत सतगुरु की सरन लेगा, वही इन पर फ़तह पावेगा और वही पार जावेगा॥

१५८–जो सतगुरु के मँगता हैं, उनकी मान प्रतिष्ठा नहीं जाती है, क्योंकि सब सतगुरु के मँगता हैं। ऐसा रचना में कोई नहीं है जो सतगुरु का मँगता न होवे और जिनको सतगुरु से माँगने में लाज और शरम है, वह काल के रू-ब-रू दीन होंगे और उसके दंड उठावेंगे। बड़-भागी वही हैं जो सतगुरु के मँगता हैं॥

१५९–वेद और पुराण का जिनको निश्चय है, वह कहते हैं कि लव मात्र के सतसंग से जीव के पाप दूर हो जाते हैं। फिर संतों के सतसंग के

फल का क्या वर्णन किया जावे कि जिसकी महिमा वेद और पुराण भी नहीं कह सकते ? जिनको संतों का सतसंग प्राप्त है तो इसमें कुछ शक नहीं है कि उनके दिन भर के पाप तो ज़रूर साफ़ होते होंगे। यह फल तो उनको हासिल होगा जो साधारण तौर पर नित्य सतसंग में आते हैं और बचन सुनते हैं और जो कि संतों का निश्चय रखते हैं और सतगुरु वक़्त से प्रीति करते हैं, उसके फल का तो कुछ वर्णन नहीं हो सकता ॥

१६०–संतों की जो स्तुति करता है या निंदा करता है, दोनों का उद्धार होगा। पर जो सेवक होकर निंदा करेगा, उसका अकाज होगा। उसकी निंदा की बर्दाश्त नहीं है ॥

१६१–फ़ायदा अंतर के सुनने और मानने से होता है। बाहर के कहने और सुनने वालों के बचन में असर नहीं होता, क्योंकि बहुत से पंडित और भेख पोथियाँ पढ़ाते और सुनाते हैं, पर ज़रा भी असर उनके दिल में नहीं दीखता ॥

१६२–जब तक सतगुरु की दया न होगी,

तब तक जीव को निश्चय नहीं आवेगा और जिसको सतगुरु के चरनों में प्रीति और प्रतीत है, उसी को दयापात्र समझना चाहिये। बहुत से लोग यह चाहते हैं कि हमारे रिश्तेदार और कुटुम्बियों को सतगुरु के चरनों में निश्चय आ जावे। यह चाह तो बुरी नहीं है, पर इतना समझना चाहिए कि जब तक सतगुरु दया दृष्टि न फ़र्मावेंगे, तब तक प्रीति और प्रतीत आनी मुश्किल है। यह बात सतगुरु की मौज पर छोड़ देना चाहिये क्योंकि जब वे चाहेंगे, एक छिन में प्रीति और प्रतीत बख़्श देंगे और संसार के जाल से निकाल लेवेंगे॥

१६३—संतों के सतसंगी को मरते वक़्त तकलीफ़ नहीं होती, बल्कि और सूरता आ जाती है, क्योंकि वह पहले से मौत को याद रखता है और संसार में कारज मात्र बरतता है। उसकी संसार की जड़ पहिले से कटी हुई है। जैसे कटे हुए दरख़्त की हरियाली चन्द रोज़ की है, इसी

तरह संतों के सतसंगी का संसारी व्यवहार समभना चाहिये ॥

१६४–संतों का सतसंग करना बहुत मुश्किल है। किसी का यह हाल है कि सतसंग करते हैं और फिर नहीं करते यानी बैठे बचन सुनते नज़र आते हैं, पर मानने के वास्ते नहीं सुनते। फिर उनको सतसंग क्या फ़ायदा करेगा? सुनना और समभना उनका ही दुरुस्त है, जिनके हृदय में असर होता है और उसके मुआफ़िक़ थोड़ा या बहुत बरताव भी है ॥

१६५–ग्रन्थों में सब जगह थोड़ा या बहुत रौला पड़ा रहता है। कहीं एक बात का खंडन और कहीं मंडन किया है। जीव किस को माने और किस को न माने। इस वास्ते जब तक सतगुरु पूरे न मिलें, जीव की ताक़त नहीं कि इस बात का निर्णय कर सके। ग्रन्थ से गवाही मिल सकती है। मार्ग हाथ नहीं आ सकता। मार्ग के भेदी संत सतगुरु हैं। यह उनसे मिलेगा। और किसी से नहीं हाथ लग सकता है।

१६६–साध वही है, जिसने सब आसरे छोड़ कर एक सतगुरु का आसरा साध लिया है और सब संतों का मूल मत, जो शब्द है, उसको दृढ़ कर पकड़ा है और जिस काम में कि गुरु भक्ति में कसर पड़े, उसको नहीं करता है। इस वास्ते वही गुरु भक्त है और वही साध है ॥

१६७–जिनको शौक़ परमार्थ और ख़ौफ़ चौरासी का है, वही सतगुरु से प्रीति करेंगे और प्रतीत भी सतगुरु की उन्हीं को आवेगी और जो परचा चाहते हैं और बिना परचे प्रतीत नहीं करते, वह परमार्थी नहीं हैं। उनको सतगुरु पर भाव नहीं आवेगा और परचा देकर प्रतीत कराने की मौज नहीं है, क्योंकि परचे की प्रतीत का भरोसा नहीं है। प्रतीत उन्हीं की सच्ची है, जिनको सतगुरु के दर्शन और बचन प्यारे लगते हैं और बिना उनके दिल को चैन नहीं आता। ऐसे जो जीव हैं, वह परचा भी देखते हैं और जो निरे परचे और करामात के गाहक हैं, उनको परचा दिखाने की मौज नहीं है ॥

१६८–सिवाय शब्द के और कोई रास्ता इस जीव को अपने मुक़ाम में पहुँचाने का नहीं है और जो और रास्ते हैं, वह काल के रास्ते हैं। शब्द हर एक के घट में मौजूद है। इसलिये उसको सुनना चाहिये। जो नहीं सुनते हैं, वह अंत में दुख सहेंगे। बाहर के गाने बजाने से यह बात हासिल न होगी। और ज़्यादा मार उन पर पड़ेगी, जो संतों के घर में हैं और फिर शब्द का खोज नहीं करते॥

१६९–पंडितों ने अपनी क़दर यों खोई कि जीवों को तीरथ और मूरत में लगाया और जो संतों ने अपना मत वेद और शास्त्र से न्यारा कहा, पर पंडित और भेख ने उसकी क़दर न जानी और जीवों को भरमा दिया और अपनी क़दर खोई। अब संत प्रगट यह कहते हैं कि तीर्थ करने वाले और शास्त्र पढ़ने वाले और मूर्ति के पूजने वाले सब चौरासी में चले जाते हैं और संत दया करके समझाते हैं कि कर्म भर्म छोड़ कर सतगुरु वक़्त का खोज करके उनकी सरन लो।

ओर कोई उपाय चौरासी से बचने का नहीं है। जब चाहो तब करो। पर जब करोगे, तब यही जतन करना पड़ेगा। बिना इस के चौरासी से बचाव नहीं हो सकता है। चाहे मानो, चाहे न मानो॥

१७०–जीव ओर ब्रह्म दोनों भाई हैं। सिर्फ़ इतना फ़र्क़ है कि उसको कामदारी मिली है ओर जीव सब उसके हुक्म में हैं। देह का बनाना ओर पालन करना सुपुर्द ब्रह्मा, विष्णु, महादेव के है ओर संसार में फँसाना भी इन्हीं का काम है। पर मुक्ति का देना सिवाय संतों के दूसरे के इख़्तियार में नहीं है, क्योंकि उस मालिक के कि जिसके अंस यह जीव ओर ब्रह्म हैं, सिर्फ़ संत ही शरीक हैं यानी वे आप मालिक हैं, क्योंकि उस मालिक ने आप संत स्वरूप जीवों के उद्धार के निमित्त धरा है ओर इस स्वरूप से जीव को वह स्थान देता है, जो ब्रह्मा, विष्णु, महादेव को भी हासिल नहीं है, पर संत चरन पर प्रीति ओर प्रतीत दृढ़ होनी चाहिये॥

१७१–पहिले एक ही था। फिर दो हुये। फिर तीन हुये और फिर अनेक, हज़ारों, लाखों और बे-शुमार पर नौबत पहुँची। अब जिसको पूरे सतगुरु जो कि उस एक से एक हो रहे हैं और उसी एक का स्वरूप हैं, मिलें, तब वह उन की दया से अनेकता के भरम से बचे और अपने निज स्थान में पहुँचे॥

१७२–संसार की जो करतूत है, उसका फल जीव को प्रत्यक्ष नज़राई देता है, इस सबब से संसार में जल्दी फँस जाता है और परमार्थ का फल गुप्त है, उस पर जल्दी निश्चय नहीं आता है और पहिले निश्चय ज़रूर है, क्योंकि बिना निश्चय के करतूत कुछ नहीं बनेगी और जब कुछ करतूत न बनी तो फल कैसे मिले और तरक्की कैसे होवे ?

१७३– वह जो सत्त है, जप तप और मौन साधन से नहीं मिलता है। ऐसी करतूत वाले सब थक रहे। किसी ने उस सत्त का जिसको संतों ने पाया है, भेद नहीं पाया। वह भेद सतगुरु

वक़्त की सेवा और सरन से मिल सकता है, क्योंकि उस सत्त ने आप सतगुरु रूप धरा है। इस वास्ते सब जीवों को जो सत्त की प्राप्ति की चाह रखते हैं, चाहिये कि और कर्म और भर्म छोड़ कर सतगुरु वक़्त की प्रसन्नता के लिये मेहनत करें तो एक रोज़ उस पद को पावेंगे॥

१७४–बाल विधवा और बाल साध को वक़्त यानी उम्र का काटना निहायत मुश्किल हो जाता है और बहुतेरे तो ख़राब हो जाते हैं। पर जो उनको सतगुरु पूरे मिल जावें और उन पर निश्चय आ जावे तो दोनों का वक़्त सहज में कट जावे। और जो विद्या गुरु मिले तो विद्या या तीरथ बरत में या मूरत पूजा में बृथा जन्म उनका बरबाद जावेगा और जन्म मरन की फाँसी नहीं कटेगी। इस वास्ते उनको और सब जीवों को चाहिये कि जितनी हो सके, सतगुरु पूरे के खोज में मेहनत करें। जो उनके खोज में इसका शरीर भी छूट जाय तो भी सोच न करे, क्योंकि जब सतगुरु के मिलने की आसा इसके चित्त में दृढ़

हुई तो वह ठीक भक्ति सच्चे मालिक की है। उसको मालिक, सतगुरु रूप से, ज़रूर मिलेगा॥

१७५–जीव इस वक़्त में ऐसे अभागी हैं कि संतों के बचन की प्रतीत नहीं करते और वेद शास्त्र क़ुरान पुराण की बात को खूब पकड़ते हैं, यहाँ तक कि वहाँ कुछ परचा भी नहीं मिलता, पर काल ने ऐसा अड़ंगा लगाया है कि अपने मतलब के बचन को जीव से मनवा लेता है और संत जो दया करके इसको भली प्रकार समझाते हैं सो नहीं मानता है और उनसे परचे माँगता है। इससे मालूम हुआ कि ये जीव काल के हैं, जो बिना परचे संतों का बचन नहीं मानना चाहते और काल का बचन बिना परचे मानते हैं। ऐसे जीवों पर संत भी तवज्जह नहीं करते॥

१७६–प्राण जोग और बुद्धि जोग की गम आकाश तक है। इसके आगे सुरत, शब्द के आसरे जा सकती है और वहाँ पहुँच कर अजायब पुरुष का दर्शन प्राप्त हो सकता है जो कि सतयुग द्वापर त्रेता में सब से गुप्त रहा, किसी को उसका

भेद नहीं मिला, अब कलजुग में संतों ने प्रगट किया है। जिनको संतों के बचन की प्रतीत है, वही उस अजायब पुरुष का दर्शन पावेंगे और मुक्ति पद को प्राप्त होंगे ॥

१७७–आज कल ऐसा अंधेर हो रहा है कि बहुतेरे साधू पंडित होने की अभिलाषा करके काशी जाते हैं और पंडितों के संग में अपना जन्म गँवाते हैं। उनको मुनासिब था कि जब साध हुये थे तो सतगुरु पूरे का खोज करके उनकी सेवा और सतसंग और कुछ अंतरमुख अभ्यास यानी साधना करते, जिससे साध बन जाते और अपने निज स्थान को पाते, न कि विद्या पढ़ने में अपने जन्म को गँवाया। पंडितों के संग से कोई भी जन्म मरन से नहीं बच सकता, क्योंकि ब्रह्मा जो वेद का कर्त्ता है, आप ही चौरासी के चक्कर से नहीं निकल सकता, फिर पंडितों की क्या ताक़त कि उससे बचें और आज कल के पंडित और ज्ञानी तो निरे बाचक हैं और सच्ची पंडिताई और सच्चा ज्ञान भी उनको प्राप्त नहीं है। यह सब

चौरासी के अधिकारी हैं, क्योंकि सिवाय सतगुरु वक़्त के और किसी की ताक़त नहीं कि जीवों को चौरासी से बचा कर निज घर में पहुँचावें ॥

१७८–काल ने अपना जाल संसार में किस ख़ूबसूरती के साथ बिछाया है कि जो जीव परमार्थ कर रहे हैं और जानते हैं कि हम बड़े परमार्थी हैं और लोग भी उनकी तारीफ़ करते हैं कि ये बड़ा परमार्थ कमा रहे हैं, उनका हाल जो ग़ौर करके देखा जावे तो परमार्थ का एक किनका भी नहीं पाया जाता यानी तीरथ बरत और जप और मूरत पूजा में मेहनत कर रहे हैं और नेम आचार बहुत भाँति करते हैं। इस से सिवाय अहंकार के और कुछ नहीं प्राप्त होता। इस वक़्त में यह करतूत मालिक को मंज़ूर नहीं है और न यह चौरासी से बचा सकती है। इस वास्ते सब चौरासी में चले जाते हैं। जिसको चौरासी से बचना मंज़ूर है, उसको चाहिए कि सतगुरु वक़्त की भक्ति करें, सिवाय इसके दूसरा उपाय बचने का नहीं है। पर क्या कहा जावे कि जीवों को और साधना में तो

मेहनत करना मंज़ूर है, पर सतगुरु भक्ति क़बूल नहीं करते। बाज़े ग्रन्थ वग़ैरा की टेक में बँधे हुये हैं और उसी को गुरु मानते हैं। अब ग़ौर करना चाहिये कि ग्रन्थ को गुरु मानने से क्या फ़ायदा होगा और कहाँ ऐसा हुक्म है? ग्रन्थ तो जड़ है। उसकी कोई सेवा नहीं हो सकती है। फिर क्या गुरु भक्ति ऐसे जीवों से बन आवेगी? ग्रन्थ की भक्ति यह है कि जो उसमें बचन लिखा है, उस पर अमल करे यानी उस में जो लिखा है कि सतगुरु का खोज करके उनकी सेवा करे और सरन लेवे, इस बचन को माने और जब यह बचन न माना गया तो ग्रन्थ की टेक झूठी है। इनका भी वही हाल समझना चाहिये जो कि मूरत पूजा वालों का है। पर सबब इस ग़लती का यह है कि जीवों को कोई सच्चा समझाने वाला नहीं मिलता। इस सबब से सब भ्रम और भूल में पड़े हैं और जो गुरु उनको मिलते हैं, वह आप कभी चेले नहीं हुए और जीवों को भटकाते और भरमाते हैं। क्या पंडित, क्या भेख, सब का यही

हाल है। इनमें कोई भी सतगुरु और सतगुरु भक्ति की महिमा को नहीं जानता। किताब और पोथी और पुरानी रस्म और लीक में आप भी बँधे हैं और उन्हीं में जीवों को भी बाँधते चले जाते हैं। सतगुरु भक्ति का उपदेश कि जिससे जीव का छुटकारा होवे और निज घर अपना मिले, कोई नहीं करता। यह उपदेश सिर्फ़ संत यानी आप सत्तपुरुष जब संसार में प्रगट होते हैं, करते हैं। क्योंकि यह सब से उत्तम मार्ग है और जल्दी से जीव का उद्धार इसमें होता है। पर इस उपदेश को वह जीव जो संस्कारी हैं, मानेंगे और सतगुरु का खोज भी वही करेंगे और जो लोग कि ऊपरी खेल और चमत्कार में राज़ी होते हैं, उन से सतगुरु भक्ति की कमाई जिसमें तन मन और धन पर चोट पड़ती है, नहीं बनेगी और उत्तम संस्कारी वही हैं, जो सतगुरु और नाम की मुख्यता करें॥

१७९—संसारी जीव मीठा सलोना भोजन खा कर प्रसन्न होते हैं और अच्छे वस्त्र पहन कर

मगन होते हैं। सो यह सब वृथा है। और गुरुमुख को कौनसा पदार्थ मीठा और सलोना और कौनसा वस्त्र प्यारा लगता है, उसका वर्णन संत सतगुरु इस तरह करते हैं कि गुरुमुख वह है जिसको सतगुरु का बोलना मीठा लगता है, क्योंकि इससे ज़्यादा कोई पदार्थ रसीला नहीं है और सतगुरु के बचन का सुनना सलोना लगता है और सतगुरु के ऊपर भाव का आना गुरुमुख का पैराहन है। सबका सार यह है। पर यह हाल सच्चे और निर्मल परमार्थी का है। उसी को यह पदार्थ ऐसे प्यारे लगेंगे जैसा कि ऊपर कहा है। और संसारी जीवों को उनसे नफ़रत होगी॥

१८०—आज कल के ज्ञानी वेद को पहिले कहते हैं और संतों को पीछे बताते हैं। यह इनकी बड़ी भूल है और सबब उसका यह है कि यह उनको संत जानते हैं कि जो वेद को पढ़ कर उसके मुवाफ़िक़ चलते हैं और जिनको कुछ थोड़ी सी साध गति हासिल हुई है। पर जो संत

कि वेद के कर्त्ता के कर्त्ता हैं, उनकी इनको बिल्कुल ख़बर नहीं है। जो वेद पढ़ कर संत कहलाते हैं, वह इन संतों के सेवकों की भी बराबरी नहीं कर सकते हैं। जैसे एक शख़्स ने विद्या तो पढ़ी पर नौकरी न पाई, दूसरे ने विद्या कम पढ़ी पर नौकरी बड़े दरबार में पाई और उस पर हुशियार है, फिर विद्या वाला उसकी बराबरी नहीं कर सकता है। यही हाल आज कल के ज्ञानियों का है कि विद्या तो ख़ूब पढ़ी पर नौकरी नहीं करी यानी सतगुरु की भक्ति प्राप्त नहीं हुई और संतों के सेवक चाहे मूरख भी हैं पर उनको भक्ति और सरन पूरे सतगुरु की प्राप्त है, तो वह एक रोज़ पूरे पद को पावेंगे और बाचक, जोगी और ज्ञानी चौरासी में भटका खावेंगे॥

१८१–पाँचों शास्त्रों का दोष तो वेदान्त ने निकाला और वेदान्त का दोष अब संत सतगुरु निकालते हैं। सतजुग, त्रेता और द्वापर में इन शास्त्रों की पोल नहीं निकली क्योंकि जब

संत प्रगट नहीं हुये थे। अब कलियुग में वास्ते उद्धार जीवों के संतों ने चरन पधारे हैं और सब मतों के दोष और ग़लतियों को खोल कर जनाते हैं और सच्चा और सीधा रास्ता उद्धार का बतलाते हैं। पर जीवों की ऐसी ओछी मति है कि उनके बचन को नहीं मानते और उन पर प्रतीत नहीं लाते हैं। ग़ौर करने से मालूम होगा कि वेद मत का निश्चय भी तो पढ़ कर या सुन कर किया है, कुछ कमाई उसकी नहीं करी और न कर सकते हैं, क्योंकि जो अभ्यास कि वेद में लिखा है, उसकी कमाई इस जुग में नहीं बन सकती है और कमाई वाले पर इनको प्रतीत नहीं, नहीं तो उससे जुगत कमाई की संतों की रीति से दरियाफ़्त करके अभ्यास में लग सकते हैं और जो सिर्फ़ पोथियों के आसरे रहे और उन्हीं को पढ़ा किये तो हरगिज़ जुगत उनसे हासिल नहीं होगी। पर विद्या का अहंकार पैदा होगा कि वह और भी अंतःकरन को मलीन करेगा और क़ाबिल कमाने जुक्ति के भी नहीं

रहेगा। आज कल यही हाल देखने में आता है कि बातें तो बहुत सी बनाते हैं पर कमाई कुछ भी नहीं। इस वास्ते परमार्थी जीवों को मुनासिब है कि सिवाय सतगुरु भक्ति या खोज सतगुरु के और कुछ काम न करें, क्योंकि और कोई करतूत से अंतःकरन की शुद्धि इस जुग में नहीं हो सकती है और जब अंतःकरन की शुद्धि न हुई तो मुक्ति कैसे प्राप्त होगी? और सिवाय संत सतगुरु के कोई जुक्ति, प्राप्ति धुर पद की, नहीं बतला सकता है, क्योंकि उस घर के भेदी सिर्फ़ वही हैं, और किसी को यह भेद नहीं मालूम है। और ऐसे जो संत सतगुरु हैं, उन्हीं की सेवा और भक्ति से अंतःकरन की शुद्धि और फिर उन्हीं की दया और मेहर से मुक्ति पद की प्राप्ति होगी और जुक्ति की कमाई भी बन आवेगी। सिवाय इसके और दूसरा उपाय उद्धार का नहीं है॥

१८२–भक्ति का बीज सिवाय संत सतगुरु के और कोई नहीं डाल सकता है। जो संत सतगुरु दयाल हैं, वही इस जीव को सीधा रास्ता

बतावेंगे और बाक़ी सब भरमाने और भटकाने वाले हैं और आप ही भरम में पड़े हुये हैं, क्योंकि ग़ौर करो कि ईंट पत्थर के बने हुए जो मंदिर हैं और उन में पत्थर की बनाई हुई मूरत जिसको आप आदमी ने गढ़ा है, रख कर भगवान मानते हैं और लोगों से उसको पुजवाते हैं और जो मंदिर कि मालिक का बनाया हुआ है और जिसमें वह आप आन कर बैठा है और जहाँ घंटा शंख और नाना प्रकार के बाजे हर वक़्त बज रहे हैं और नित्त आरती हो रही है, उसका भेद इस जीव को नहीं बताते हैं। इसलिये ऐसे जो अंधे हैं, वह जब आप ही भूल में पड़े हैं, वह और को भी रास्ता भुलाते हैं और बजाय जीवों के कारज सँवारने के उनका अकाज करते हैं। अन्धा अन्धे को क्या रास्ता बतावेगा ? इस वास्ते कहा जाता है कि सतगुरु खोजो। जब तक सतगुरु नहीं मिलेंगे, तब तक अंतर का भेद हरगिज़ प्राप्त नहीं होगा और सतगुरु वही हैं जिनका इश्क़ शब्द में लगा हुआ है और अंतर का भेद

और रास्ता निज घर का शब्द के रास्ते से बताते हैं और अगर बाहर की करतूत से कोई उनको परखा चाहे तो हरगिज़ परख में नहीं आवेंगे। कुल जीव नादान और अन्धे हैं। इनकी क्या ताक़त कि संत सतगुरु जो सुझाके हैं, उनको परख लेवें और पकड़ लेवें ? अन्धा सुझाके को नहीं पकड़ सकता है। पर सुझाका जिसको चाहे अपने को पकड़ा सकता है। इस वास्ते दुनिया के जीवों की ताक़त नहीं है कि सतगुरु को पहिचान लेवें और सतगुरु अपनी मौज से चाहें तो हर तरह से इसको जना सकते हैं। पहिले इसी क़दर पहिचान काफ़ी है कि जो घट का भेद बतावें, शब्द मार्ग का उपदेश करें, उनको सतगुरु जाने और इतना देख लेवे कि वह आप भी शब्द में रत हैं या नहीं। घट का भेद सिवाय संत सतगुरु के दूसरे के पास नहीं है या जिसको उन्होंने बख़्शा होगा। और सतगुरु किसी बानी बचन या ग्रन्थ के आसरे नहीं हैं। वह आप मालिक रूप हैं। और जब तक कि घट में अभ्यास संत सत-

गुरु की दया और मेहर लेकर न करेगा, तब तक निज पद को प्राप्त नहीं होगा। और संत सतगुरु की मौज है कि चाहे जिस जीव को जैसे चाहें पार करें यानी उनकी प्रीति और प्रतीत मुख्य है, फिर चाहे वह पहिले सतसंग करावें या अभ्यास शब्द का करावें, चाहे पहिले सेवा में लगावें, वह सब तरह समर्थ हैं। और जो प्रसन्न होवें तो एक छिन में चाहें जो बख़्श देवें। पर उनका प्रसन्न होना ज़रूर है॥

१८३–जिसको एक वक़्त विरह उठी यानी शौक़ मालिक के मिलने का पैदा हुआ, जो उस हालत में सतगुरु पूरे न मिले तो वह विरह निष्फल जावेगी। अगर विरही यह दावा करे कि बिना सतगुरु के पद को पाऊँगा, यह ग़लत है क्योंकि बिना सतगुरु वक़्त के मिले पद का मिलना ना-मुमकिन है। चाहे विरही होवे या नहीं, दोनों को सतगुरु की ज़रूरत है। और जो विरह किसी क़दर सच्ची भी हुई और सतगुरु पूरे न मिले तो अधूरे गुरु के साथ में जाती रहेगी। फिर जो गुरु उसको

पूरा भी मिले तो उसकी चाह नहीं रहती। और जिसको विरह और प्रेम नहीं है और वह सतगुरु पूरे की सरन में आगया तो सतगुरु दयाल अपनी दया से उसकी विरह और प्रेम बढ़ा कर काम पूरा कर देंगे और जो अधूरे गुरु से मिला तो वह अपनी विरह के अहंकार में रहेगा और काम भी पूरा नहीं बनेगा। सब तरह से मुख्यता सतगुरु पूरे की है। इससे जानना चाहिये कि बिना उनके मिलने के किसी का कारज पूरा नहीं हो सकता॥

१८४–सतगुरु की सरन का दर्जा बहुत ऊँचा और कठिन है॥ और वैसे तो हर कोई कहता है कि हमने सरन ले ली। पूरे सरन वालों की यह हालत है कि उनको सिवाय सतगुरु के और कोई विशेष प्यारा नहीं लगता है। जिसकी यह हालत है उसका कहना सब दुरुस्त है। पहिले जो संत हुये, उन्होंने जब तक जीव ने तन मन धन नहीं भेंट किया, उद्धार नहीं किया। पर अब राधास्वामी दयाल जीवों को दुखी और बल हीन देख कर थोड़ी दीनता और प्रीति पर उद्धार

अपनी तरफ़ से दया करके फ़रमाते हैं। इस वास्ते जिसको पूरे सतगुरु के दर्शन और सेवा और सतसंग और शब्द का अभ्यास प्राप्त है, वही जीव बड़भागी है।

सुत दारा और लक्ष्मी, सब काहू के होय।
सतगुरु सेवा साध सँग, कलि में दुर्लभ दोय॥

१८५–राम जो कर्त्ता तीन लोक का है और उनका पालन और पोषण और संहार कर रहा है, सो जीव का मुद्दई है, क्योंकि उसने असली रूप से जुदा करके जीव को गर्भ बास दिया और फिर अनेक प्रकार के दुश्मन अन्तर और बाहर जीव के संग लगा दिये यानी अंतर में तो काम क्रोध लोभ मोह अहंकार और बाहर माता पिता सुत स्त्री मित्र धन धाम और भोगों में फँसा दिया। इसलिये ऐसे दुखदाई को क्या माने ? इस वास्ते सतगुरु को मानना चाहिये कि जिनके प्रताप से ऐसे मुद्दई के जाल से निकल कर सदा सुख का स्थान प्राप्त होवे। और कोई बचाने वाला काल के जाल से इस संसार में नहीं है॥

१८६–संत सतगुरु ने जिस नाम का निर्णय

किया है, वह वेद शास्त्र में नहीं है और संत सतगुरु वही हैं, जिनके पास वह पूरा नाम है और यों तो बहुतेरे भेष धारी अपने तईं साध और संत कहते हैं, पर वह साध और संत हो नहीं सकते। सच्चे और पूरे संतों के प्रताप से रोटी खाते हैं। पर संतों का पद वही पावेगा, जो उनका प्यारा होवेगा और प्यारा वही होगा, जो उनके चरनों में प्रीति और प्रतीत करेगा और प्रीति और प्रतीत उन की मेहर और सेवा और सतसंग से आवेगी। और त्रिलोकी नाथ का नाम और पद भी संतों की दया और उनकी जुक्ति की कमाई से मिलेगा। और किसी तरह इस कलियुग में नहीं मिलेगा॥

१८७–जिसको सतगुरु के चरनों में प्रीति है, उसको सिवाय महिमा सतगुरु के और कोई बात नहीं सुहाती है। और जिसको सतगुरु का निश्चय है, वह सतगुरु में कोई औगुण नहीं देखता है। और जो औगुण दृष्टि आई तो सतगुरु भाव जाता रहा। इस वास्ते सतगुरु की निसबत

कभी औगुण दृष्टि लाना नहीं चाहिये और जिस की ऐसी दशा है, वही गुरुमुख होगा और उसी को एक दिन परम पद मिलेगा ॥

१८८–ईश्वर को सर्वत्र आकाश और पाताल में व्यापक बताते हैं, पर किसी को मिलता नहीं। फिर उसके सर्व व्यापक होने से जीव को क्या फ़ायदा ? क्योंकि वह रूप किसी को प्राप्त नहीं होता। और जब मालिक ने सतगुरु रूप धारन किया तो इस रूप से जीवों को दर्शन भी देता है और भेद समझा कर अपनी दया के साथ जुक्ति की कमाई करा कर निज घर में पहुँचाता है और अपने निज रूप का दर्शन देता है। अब ग़ौर करना चाहिये कि सतगुरु रूप बड़ा है कि व्यापक रूप। इससे किसी का कारज नहीं बनता और सतगुरु रूप से जिस वक़्त कि जीव को सतसंग और सेवा करके उस पर निश्चय आ गया तो सहज में कारज बनता है। बिना मिलाप सतगुरु वक़्त के किसी को मालिक का पूरा निश्चय नहीं हो सकता है और जब पूरा निश्चय नहीं हुआ तो पूरी प्रीति और प्रतीत भी

नहीं आई और जब प्रीति और प्रतीत नहीं तो उद्धार कैसे होगा ? फिर जो कुछ करतूत परमार्थी बनेगी, वह कर्म का फल चौरासी योनि में देगी। पर सच्चे मालिक की भक्ति कभी नहीं आवेगी, जब तक सतगुरु वक़्त के न मिलेंगे और उनके बचन पर निश्चय न आवेगा॥

१८९–साध ब्राह्मण क्षत्रिय आज कल अहंकारी हो गये हैं। न साध में साधता और न ब्राह्मण में ब्राह्मणता और न क्षत्रिय में राज और बल रहा है। ख़ाली अहंकार करते हैं। पर वैश्य और शूद्र अभी कुछ अपनी चाल पर हैं। संत फ़रमाते हैं कि साध संग करो। पर जब साध दुर्लभ हुए तो कहाँ से संग प्राप्त होवे ? और बिना संत और साध संग, उबार नहीं है। सो अब समझना चाहिये कि बिना संस्कार संत या साध नहीं मिलेंगे। जिसका भाग ज़बर है, उसको ज़रूर संत सतगुरु अथवा साध मिलेंगे। और जो कोई यह कहे कि संस्कारी को साध संग की क्या ज़रूरत है ? सो ग़लत है। चाहे संस्कारी होवे

या असंस्कारी, दोनों को साध संग की ज़रूरत है। पर इतना फ़र्क़ होगा कि संस्कारी को बचन जल्दी असर करेगा और वह उसको सहज में मान सकेगा और असंस्कारी से बचन कम माना जावेगा और कम बर्ता जावेगा, पर उसके बीजा पड़ेगा और आगे उससे कमाई बनेगी। और संस्कारी उसको कहते हैं कि जो पिछले जनम से संत सतगुरु अथवा साध से मिलता और उन पर भाव और निश्चय लाता चला आता है और जिसका भाग उनकी दया से सहज सहज बढ़ता चला जाता है। और संत सतगुरु की दया से असंस्कारी भी संस्कारी हो सकता है। और संत सतगुरु की तो ऐसी महिमा है कि जो उनका दर्शन करे, उसका किसी क़दर उद्धार होता है और चौरासी से बच जाता है और बहुतेरे दुःख व क्लेशों से रच्छा हो जाती है और आगे को रास्ता उद्धार का उनकी कृपा से जारी हो जाता है। इस वास्ते कुल जीवों को चाहिये कि अपने फ़ायदे और सुख के लिये जहाँ कहीं संत सतगुरु

प्रगट होवें, ज़रूर जिस क़दर बन सके, उनके दर्शन और सेवा से अपना भाग बढ़ावें ॥

१९०—नर देही उसी की सुफल है, जिस को सतगुरु वक़्त की सेवा प्राप्त है। और सेवा में इतना भेद समझना चाहिये कि दर्शनों के वास्ते चलने से पाँव पवित्र होते हैं और दर्शन से आँखें पवित्र होती हैं और हाथों की सेवा से जैसे चरन दाबने और पंखा करने से हाथ पवित्र होते हैं और जल भरने की सेवा से कुल देह पवित्र होती है और चित्त से बचन श्रवन करने और विचारने और जिस क़दर बन सके, मानने से अंतःकरन पवित्र होता है। इसी तरह जब सेवा में जीव लगा, फिर सतगुरु की दया और उनके सतसंग का फल अपने आप देखता चला जावेगा और जो कुछ कि आनन्द और दर्जा उसे प्राप्त होगा, उसकी महिमा बयान में नहीं आती है ॥

१९१—आज कल गृहस्थी और भेष जब अपने स्थान से चलते हैं, तो तीरथ का भाव करके निकलते हैं और सतसंग जो सब का सार

है, उसकी किसी को तलाश नहीं है और न उसका कुछ भाव है। और जिसको कि वह लोग सतसंग समझते हैं, वह असल में सतसंग नहीं है। सतसंग, सतगुरु के संग का नाम है। और जहाँ क़िस्से कहानी लड़ाई झगड़ा और विद्या की बातें होवें, उसका नाम सतसंग नहीं है। सतगुरु रूप, आप सत्तपुरुष का है। इसलिये उन्हीं के संग का नाम सतसंग है। और बाक़ी सब झगड़े हैं। इन से कभी जीव का उद्धार नहीं होगा॥

१६२–जो लोग कि राम और ब्रह्म को सर्व व्यापक समझ कर टेक बाँध रहे हैं और उसका इष्ट रखते हैं, उनको समझना चाहिये कि ऐसी टेक से जीव का कारज हरगिज़ नहीं होगा, क्योंकि व्यापक रूप राम अथवा ब्रह्म दीपक के समान है, सबको चाँदना दिखा रहा है, उसी चाँदने में चोर चोरी करता है, शराबी शराब पीता है, विषई विषय भोगता है, परमार्थी परमार्थ कमाता है, पर वह किसी से कुछ नहीं कहता है। फिर ऐसे नाम के जपने या इष्ट बाँधने से चौरासी नहीं छूटेगी

और मन अपने नाच नचाता रहेगा। और जिनको कि सतगुरु रूप मालिक की टेक है और उनका सतसंग प्राप्त है, तो विषई विषय भोग छोड़ देगा और चोर चोरी से हट जावेगा और जो खोटे काम हैं, उनसे दिन-ब-दिन बचता हुआ निर्मल हो जायगा और एक दिन अपने निज पद और निज रूप को पा जावेगा और राम ब्रह्म या कोई और नाम या इष्ट जपते जपते उम्र गुज़र जायगी, पर विकार दूर न होंगे और न भोगों की आसा और तृष्णा की जड़ काटी जावेगी। फिर कैसे उद्धार हो सकता है?

१६३–जो कोई यह ख़्याल करते हैं कि हमने तो सब त्याग दिया या पोथियाँ पढ़ पढ़ और विचार करके सब छोड़ दिया, यह बड़ी भूल और धोखा है। उनको अपने मन और इन्द्रियों की परख नहीं आई। जब भोग नाना प्रकार के सनमुख आवें या कोई मान और आदर करे या कोई धनवान या राजधारी बात पूछे, तब देखना चाहिये कि मन कैसा मगन हो कर उनकी तरफ़

मुतवज्जह होता है और जब निरादर होवे या मतलब की बात हासिल न होवे, तब कैसा दुखी होता है और क्रोध में भर आता है। इस से मालूम हुआ कि इच्छा, मान और बड़ाई और चाह, सैर और तमाशे और नामवरी की अभी बहुत ज़बर अंतर में धसी हुई है। जो कोई इन बातों को यानी ज़ाहिरी त्याग और बैराग और विचार वग़ैरा में लगे रहने और ज्ञान के ग्रंथों के पढ़ने को परमार्थ समझता है, यह भी भूल है क्योंकि इन बातों से मन नहीं मरता है। मन के मारने की जुगत यह है कि पूरे सतगुरु या पूरे साध की सेवा और उनका सतसंग और रूखा सूखा टुकड़ा खाकर उनकी जुगत यानी सुरत शब्द मार्ग के अभ्यास में मन को जोड़ना। और जब इन बातों का ज़िक्र भी नहीं, तो मन कैसे बस आवेगा और परमार्थ कैसे बनेगा ? और जब हाल यह है कि ज़बान से तो कहते हैं कि इस लोक और परलोक के विषय भोग काग विष्टा के समान हैं और मन में चाह और तलाश

उन्हीं भोगों की धरी हुई है तो फिर उनको क्या फ़ायदा होगा ? अफ़सोस है कि वह ऐसे ग़ाफ़िल हैं कि उनको यह भी तमीज़ नहीं होता कि हम कहते क्या हैं और करते क्या हैं। पर संसार उनसे भी ज़्यादा ग़ाफ़िल है कि उन्हीं को परमार्थी जानता है और डूबे हुओं के पीछे लग कर डूबता चला जाता है ॥

१९४–बाज़े विद्यावान ऐसा कहते हैं कि भोगों की चाह और काम क्रोध आदिक मन और इन्द्रियों के स्वभाव हैं और जीव का स्वरूप इनसे न्यारा है और जो उसको विचार करके समझ लिया तो यह उसका कुछ बिगाड़ नहीं कर सकते। अब समझना चाहिये कि यह बड़ा धोखा है कि जब भोग और बिलास की चाह और मन इन्द्रियों के विकार उनके स्वभाव हुए, फिर संसारी जीव और ज्ञानी में क्या भेद हुआ। जैसे वह इनके फल चौरासी में भोगेंगे, ये भी ऐसे ही भोगेंगे, क्योंकि भोगते वक़्त दोनों एक से

आशक्त होकर अपने आपे को भूल जाते हैं यानी देखने में आता है कि जब ऐसे साहबों का कोई निरादर करे या तान मारे या इल्ज़ाम लगावे या जब वे दूसरे की मान प्रतिष्ठा होती हुई देखें तो उसी वक़्त उनको क्रोध और ईर्षा सताती है और जब आसा किसी भोग की पूरी न होवे तो दुखी होते हैं और अनेक जतन उसके पूरे होने के लिये करते हैं और हर एक से मदद चाहते हैं और सवाल करते हैं। अब ग़ौर करना चाहिये कि यह क्या हालत है। भोग तो काग विष्टा के समान हुए और वे भी उनके भोगने के लिये महा नीच सीढ़ी पर उतर बैठे कि जहाँ से चौरासी का रास्ता खुला है। इस वास्ते यह बात दया करके कही जाती है कि जिस किसी को अपने जीव का उद्धार मंज़ूर है, उसको मुनासिब है कि विद्या ज्ञानी के संग से बच कर, जैसे बने सतगुरु का खोज करके उनके चरणों का आसरा लेवे तो कारज होगा। और किसी इष्ट से या पंडित या भेष के संग से चौरासी से नहीं बचेंगे। भेष और

पंडित को खिलाना पिलाना और जो बने सो देना मुनासिब है। पर तन मन सतगुरु के चरनों में अर्पना ज़रूर है। यह बात उसी के लिये है और उसी से मानी जावेगी जिसको मालिक से मिलने की चाह है और अपने जीव का उद्धार मंज़ूर है। भेष और पंडित और संसारियों को यह बचन प्यारे नहीं लगेंगे॥

१९५-विद्यावान और चतुरा सतगुरु के संग के लायक़ नहीं हैं, क्योंकि ये अहंकारी होते हैं और इनको संत सतगुरु पर भाव नहीं आता। संत देखी हुई कहते हैं और यह नादान सुनी हुई बकते हैं और अपनी अक़्ल के ज़ोर से विधी मिलाना चाहते हैं। और जो जुक्ति कि उन को बताई जावे, उसमें इनका मन जो कि सैलानी और अहंकारी और भोगों की चाह वाला है, नहीं लगता और करामात की चाह रखते हैं और करामात दिखाने की संतों की मौज नहीं है, क्योंकि जो प्रीति करामात के ज़ोर से होवेगी, उसका कुछ भरोसा नहीं है। करामात उनके

वास्ते है कि जिनको परमार्थ की सच्ची चाह है और अपने जीव के कल्याण के वास्ते संतों पर भाव और प्रतीत लाये हैं। ऐसे शख़्स हमेशा करामात देखते हैं और जिन लोगों की असली चाह संसार की बड़ाई और भोगों की प्राप्ति की है और परमार्थ की सच्ची चाह नहीं है, वे क़ाबिल करामात दिखाने और सतसंग में लगाने के नहीं हैं। इस वास्ते जो जीव कि परमार्थी हैं, उनको चाहिये कि ऐसे लोगों के संग से होशियार रहें॥

१९६–संत अगर ज़ाहिर में क्रोध और लोभ भी करें तो उसमें जीव का उपकार है और संसारियों का क्रोध और लोभ चौरासी ले जाने वाला है। पर इस बारीकी को मूरख नहीं समझते। यह बात भी सतसंगी जानते हैं। मूरख निन्दा करते हैं। पर संत दयाल हैं, अपनी दया से उन का भी उद्धार करते हैं॥

१९७–संसारी जीव मरने से डरते हैं, क्योंकि वह संसार और उसके पदार्थों में आशक्त हैं और जो साध है, वह मरने से नहीं डरता,

क्योंकि वह संसार और उसके पदार्थों को दुख रूप देखता है और उसको अपना घर नहीं जानता, मुसाफ़िरों के तौर से रहता है और पूरन परमानंद स्वरूप जो सतगुरु का है, उसका आनंद लेने को चाहता है। इस सबब से मरने का दुख उसको नहीं होता बल्कि साध जीते जी मर लेते हैं और सतगुरु के निज स्वरूप के आनन्द में मगन रहते हैं॥

१६८—संतों के दरबार में कोई क़ायदा ख़ास सेवा भजन और सतसंग का मुक़र्रर नहीं है और न संत किसी पर ज़बरदस्ती करते हैं। सिर्फ़ बचन सुना कर दुरुस्ती करते हैं। जो उत्तम जीव हैं, वह जल्द मानते हैं और समझ जाते हैं और जो मध्यम हैं, वह आहिस्ता आहिस्ता मानते हैं और जो नहीं समझते और नहीं मानते, वह सतसंग में ठहर नहीं सकते। पर सतसंगियों को मुनासिब है कि किसी से ईर्षा न करें और न यह इरादा करें कि या तो हमारे अनुसार हर कोई बरते और नहीं तो चला जावे, क्योंकि चले जाने में

उसका नुक़सान है और सतसंगी का कुछ फ़ायदा नहीं और जो वह सतसंग में पड़ा रहा तो एक रोज़ समझते समझते समझ जावेगा और फिर सब के अनुसार बरतने भी लगेगा ॥

१९९–भक्तिवान पुत्री बेहतर है साकित पुत्र से, क्योंकि भक्तिवान स्त्री दोनों कुलों का उद्धार करेगी और साकित पुत्र दोनों का अकाज करेगा। इस वास्ते बड़भागी वही कुल है कि जिसमें पुत्र या पुत्री भक्तिवान पैदा होवे। जिस कुल में एक भक्त पैदा होवे, उसके अष्ट कुलों का उद्धार होता है और साकित चाहे जितने होवें, वह नर्क में ले जावेंगे ॥

२००–जब कि जीव सतगुरु के स्थूल स्वरूप को जो कि उन्होंने वास्ते उद्धार जीवों के धारन किया है, नहीं पहिचान सकता है तो सूक्ष्म रूप को कैसे पहिचानेगा ? सो सिवाय गुरुमुख के और किसी को पूरी पहिचान नहीं आवेगी, जैसे पारस के संग जब लोहा मिलता है, सोना हो जाता है, पर और कोई धातु सोना नहीं हो

सकती। और जीवों का यह हाल है कि गुरुमुख होना तो चाहते हैं पर गुरु भक्ति जैसी कि चाहिये नहीं करते। इस वास्ते चाहिये कि सतगुरु वक़्त की भली प्रकार भक्ति करें तो आहिस्ता आहिस्ता गुरुमुख बन जावेंगे। कोई मूरख जीव यह कहते हैं कि सतगुरु पूरे हम जब जानें, जब किसी को सतगुरु बनाया होवे। अब ख़्याल करो कि जो किसी को सतगुरु बनाया भी होगा तो उनको उससे क्या हासिल होगा। जो वह आप सतगुरु बना चाहें तो सतगुरु भक्ति करें, तब आप देख लेंगे। सो भक्ति तो बनती नहीं है, वृथा नर देही गँवाते हैं। पर इसमें भी मौज है, क्योंकि जो सब गुरुमुख हो जावें तो संसार की रचना कैसे रहे॥

२०१–भेख और ब्राह्मण का संसार में आदर है। पर इनको बड़ा वही जानते हैं जो परमार्थ की चाह नहीं रखते, क्योंकि वह जुक्ति जिस से जीव अपने निज स्थान को पावे, इनके पास नहीं है। उन्होंने तो भेष और विद्या केवल

स्वार्थ के लिये हासिल की है। जो जीव कि दर्दी परमार्थ का है, उसके चित्त में इन दोनों का आदर नहीं रहेगा, चाहे बाहर से वह इनकी ख़ातिरदारी कर दे और धन भी दे दे, पर मन उनको नहीं दे सकता। इस वास्ते पंडित और भेख को चाहिये कि ऐसे लोगों के यानी सच्चे परमार्थियों के सतसंग में न जावें और जो जावें तो कपट न करें क्योंकि उनके रू-ब-रू पाखंड और कपट की बातें पेश नहीं जावेंगी। वहाँ सचौटी से बर्तना चाहिये तो कुछ हासिल भी होगा, नहीं तो अपना निरादर करावेंगे और जहाँ कि संत आप प्रगट हैं और उनका दरबार लगता है, वहाँ जाकर झूठी और कपट की बातें बनानी अपनी कुगत करानी है क्योंकि संत तो समर्थ हैं, वह बरदाश्त कर लेते हैं, पर उनके जो सतसंगी हैं, उन से बरदाश्त नहीं होती है। वह उनकी कपट को खोल देते हैं। क्योंकि उस सतसंग में रात दिन सच्चे की छाँट होती रहती है। वहाँ कपटी और पाखंडी का कैसे गुज़ारा हो सकता है?

२०२-ईश्वर के दरबार के दरबानी ब्रह्मा विष्णु और महादेव हैं और संत सतगुरु के दरबार के दरबानी उनके सेवक हैं और इनका दर्जा इतना ऊँचा है कि ब्रह्मा विष्णु महादेव और ख़ुद ईश्वर जो उनका मालिक है, संतों के सेवक को रोक नहीं सकते और न उस का मुक़ाबला कर सकते हैं, क्योंकि संत सब से बड़े हैं और इस वास्ते उनके सेवकों को भी वह दर्जा मिलता है कि जिसकी बराबरी ईश्वर और देवता नहीं कर सकते ॥

२०३-संत के बचन का अर्थ संत ही ख़ूब कर सकते हैं। और किसी को ताक़त नहीं है कि उनकी बानी का अर्थ कर सके। जो कोई करेगा वह अपनी बुद्धि अनुसार करेगा और बुद्धि की उस में गम नहीं है। क्योंकि संतों की बानी अनुभवी है और उसके अर्थ भी अनुभवी हैं। विद्यावान की ताक़त नहीं कि उसको ज्यों का त्यों समझ सके ॥

२०४-जो नाम में शक्ति होती तो हज़ारों

जप रहे हैं, किसी को तो असर होता। इससे मालूम हुआ कि नाम में शक्ति नहीं है। शक्ति सतगुरु में है। बड़भागी वह जीव हैं, जो सतगुरु को सेव रहे हैं। जो गुनहगार भी हैं और सतगुरु को पकड़ लिया है तो वह माफ़ हो जावेंगे और जो बे-गुनाह हैं और सतगुरु को नहीं पकड़ा है तो वह बढ़के गुनहगारों में गिने जावेंगे॥

२०५–बाज़े मानी और अहंकारी लोग जो सतसंग में आते हैं, उनको सतसंग का रस नहीं आता है, क्योंकि वह दोष दृष्टि लेकर आते हैं और जो समझाओ तो कुछ नहीं समझते। और ज़ाहिर में ग्रन्थ का तो बहुत भाव करते हैं पर बचन एक भी नहीं मानते। और जो लोग बचन मानते हैं और जितना हो सके उसकी कमाई भी करते हैं और सतगुरु को मुख्य रखते हैं, उनको वे ओछा समझते हैं। ऐसे अहंकारियों को संतों से कभी कुछ फ़ायदा न होगा। वह ग्रन्थ के टेकी हैं। और जो ग्रन्थ में हुक्म है कि सतगुरु का खोज करो, उनकी सेवा से कुछ फ़ायदा

प्राप्त होगा, उसको नहीं मानते हैं। ग्रन्थ ही को गुरु मानते हैं। यह लोग बर-ख़िलाफ़ गुरु नानक के बचन के अमल करते हैं, क्योंकि ग्रन्थ गुरु नहीं हो सकता, वह तो जड़ है, ख़ुद बोलता नहीं है और न उपदेश कर सकता है। यह काम सतगुरु ही का है। अगर ग्रन्थ उपदेश कर सकता तो निर्मले और उदासी काशी में जाकर पंडितों के किंकर न होते और ग्रन्थ को वेद शास्त्र से कम न समझते और तीरथ और बरत में न भरमते और अपने चेलों को यह उपदेश न करते कि बाद उनके मरने के उनकी गया करो। ग्रन्थ में वह भेद है जो कि वेद के कर्त्ता ब्रह्मा को भी मालूम न हुआ। पर सिवाय सतगुरु पूरे के दूसरा कोई उस भेद को बयान नहीं कर सकता। इस वास्ते सब को चाहिये कि मुख्यता सतगुरु की करें। वह ग्रन्थ का भेद भी कह सकते हैं और बिना ग्रन्थ भी उद्धार कर सकते हैं और जो लोग सतगुरु वक़्त का खोज नहीं करते, वह चौरासी में भरमेंगे ॥

२०६–बाचक ज्ञानी की मुक्ति नहीं। वे सिर्फ़ बातें बनाते हैं। और जो सच्चे ज्ञानी हैं, उनके स्थूल कर्म कटते हैं, पर सूक्ष्म नहीं दूर होते हैं। वह बग़ैर संतों के पद में पहुँचने के नहीं कट सकते हैं। और मालूम होवे कि इस जुग में मुक्ति भी संतों के द्वारा हो सकती है, क्योंकि बग़ैर स्थूल और सूक्ष्म कर्म कटे हुए, मुक्ति कैसे होगी और कर्म काटने की जुक्ति ज्ञानियों के पास नहीं है॥

२०७–गुरुमुख उसका नाम है जो सतगुरु को मालिक कुल्ल समझे और उनकी किसी करतूत पर तर्क न करे और अभाव न लावे। जैसे किसी के घर में मौत हो गई या कोई दुख आकर पड़ा या नुक़सान हो गया या गर्मी ज़्यादा हुई या सर्दी ज़्यादा हुई या बारिश ज़्यादा हुई या बिल्कुल न हुई या बीमारी या मरी या और कोई मुश्किल पड़ी तो उस वक़्त ऐसा न कहे कि ऐसा मुनासिब न था या यह बेजा या बुरा हुआ बल्कि यह समझना चाहिये कि जो हुआ सो

मौज से हुआ और ऐसा ही मुनासिब होगा और इसी में मसलहत होगी। सो यह बात किसी पूरे गुरुमुख से बन आवेगी। और किसी की ताक़त नहीं है ॥

२०८—राम सब के घट में व्यापक है, पर कोई उसको नहीं पहचानता और उसके देखते जीव औगुण करते हैं और वह मनै नहीं करता और चौरासी भोगवाता है। फिर ऐसे राम से क्या मतलब निकलेगा ? जब सतगुरु मिलें और उसका पता बतावें कि इस स्वरूप से राम तुम्हारे घट में व्यापक है, तब इस जीव को ख़बर पड़े और बुरे कामों और चौरासी से बचे। इस वास्ते खोज सतगुरु का ज़रूर है, क्योंकि वह प्रगट राम हैं और जो गुप्त राम है, उसका खोज बिना सतगुरु के नहीं हो सकता। और जो ऐसा नहीं करते, उनको न राम मिलेगा, न चौरासी छूटेगी और दुर्लभ नर देही मुफ़्त बरबाद होगी और जो सतगुरु का खोज सच्चा होकर करेगा तो

वे ज़रूर ही मिलेंगे क्योंकि सतगुरु नित्य अवतार हैं और हमेशा संसार में मौजूद रहते हैं ॥

२०६–अंतर में जो शब्द होता है उसका सुनना, यह शब्द भक्ति है और जिस घट में शब्द प्रगट है उनसे प्रीति करना और सेवा करना, यह सतगुरु सेवा है और वही सतगुरु हैं और शब्द उनका निज स्वरूप है। उनके बचन का मानना और उस पर अमल करना, यह बाहरमुख भक्ति सतगुरु की है और अंतर में शब्द का सुनना, अंतरमुख भक्ति सतगुरु की है। मगर पहिली सीढ़ी यह है कि जिस स्वरूप से सतगुरु उपदेश करते हैं, उससे प्रीति होनी चाहिये। तब सतगुरु के शब्द स्वरूप से प्रीति होगी और जिसको देह स्वरूप सतगुरु से प्रीति नहीं है, उसको शब्द स्वरूप में भी प्रीति नहीं होगी। और चाहे जितनी मेहनत करे, उसको शब्द नहीं खुलेगा। और जिसको सतगुरु के देह स्वरूप से प्रीति है, पर शब्द में ऐसी प्रीति नहीं है, उसका उद्धार सतगुरु अपनी दया से

करेंगे। पर जिनको सतगुरु से प्रीति है, उनको शब्द में भी प्रीति ज़रूर होगी। पहिले प्रीति और भक्ति सतगुरु के देह स्वरूप की होनी चाहिये। बग़ैर इसके काम नहीं बनेगा ॥

२१०–नारद मुनि जिनको प्रत्यक्ष राम का दर्शन हुआ, पर इतनी ताक़त राम की न हुई कि उनको चौरासी से बचा लेवे। इस से तो गुरु ने ही बचाया। फिर आज कल जो लोग राम का नाम जपते हैं कि जिस को कभी आँख से नहीं देखा और पूरे गुरु से मिले नहीं तो यह चौरासी से कैसे बचेंगे? इस वास्ते चाहिये कि अपने वक़्त का सतगुरु खोजें और उनकी सरन लेवें ॥

२११–निर्मले ज्ञानियों से पूछना चाहिये कि जो तुम गुरु नानक के घर के हो तो गुरु ने ग्रन्थ रचा है, उस पर अमल क्यों नहीं करते और वेद शास्त्र के किंकर क्यों होते हो यानी गुरु ने जो भक्ति कही है, उसकी कमाई और जैसी दीनता वर्णन की है उसकी धारना क्यों नहीं

करते ? और जो अपने को ज्ञानी मानते हो, यह बड़ी भूल है। बग़ैर भक्ति, ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ ? यह तो पोथियों का ज्ञान है। जिस वक़्त माया का चक्कर आवेगा, सब उड़ जावेगा। इस वास्ते सतगुरु पूरे की भक्ति करो, तब सच्चा ज्ञान प्राप्त होगा। और व्यास और वशिष्ठ जो अपने मत में पूरे थे, उन पर भी माया ने छापा मारा। फिर तुम कैसे बचोगे ? माया से केवल संत बचे हैं या वह जो उनकी सरन में आया। और कोई हरगिज़ नहीं बचेगा। जो तुम को संतों की प्रीति नहीं है तो काल के जाल में फँसे रहोगे। और जो नर देही सुफल करना चाहते हो तो विद्या और बुद्धि का अहंकार छोड़ कर संत सत-गुरु के आगे दीनता करो। वह समर्थ हैं, माया और काल दोनों से बचा कर निज स्थान को पहुँचा देंगे। आगे तुम को इख़्तयार है, चाहे इस बचन को मानो या न मानो। तुम्हारे भले के वास्ते कहा गया है॥

२१२—कलजुग में बादशाह संत हैं। जो

जीव उनके हुक्म में चलेंगे यानी जो कर्म और उपासना संतों ने इस कलजुग के वास्ते कही है, उसको करेंगे, वह खुश रहेंगे और उनका उद्धार होगा और जो इस हुक्म के बर-ख़िलाफ़ अमल करेंगे यानी पिछले जुगों के कर्म और उपासना और ज्ञान, जो शास्त्र और पुराणों में लिखा है, करेंगे तो उनसे वह कर्म विधि पूर्वक नहीं बन सकेंगे और उल्टा अहंकार बढ़ेगा, क्योंकि पुराने जो क़ानून हैं, वह सब रद्द और ख़ारिज हुये। अब जो कोई उनकी टेक रक्खेगा और उन पर चलेगा, उसका काम हरगिज़ नहीं बनेगा और चौरासी से नहीं बचेगा। इस वास्ते सब जीवों को चाहिये कि संतों का हुक्म मानें। और संतों ने यह कर्म और उपासना मुक़र्रर की है कि सतगुरु का सतसंग और सेवा और दर्शन और उनकी बानी का पाठ और श्रवण और उनके नाम का सुमिरन, यह कर्म है और सतगुरु के स्वरूप में प्रीति और उनका ध्यान और अंतर में उनके शब्द का सुरत से श्रवण, यह उपासना है॥

२१३–ब्राह्मण और क्षत्रिय ने अपना कर्म और धर्म तो छोड़ दिया, पर अहंकार नहीं छोड़ा। पिछले जुगों के जो कर्म करते हैं, वह विधि पूर्वक नहीं बनते और उनके आचार्यों ने जो कलजुग के वास्ते कर्म कहे हैं, वह नहीं करते हैं। इस सबब से अभागी रहते हैं और लाचार हैं कि इस वक़्त में परमार्थ जीविका के आधीन है और पिछले वक़्त में परमार्थ के आधीन जीविका थी। पर अब कलजुग में जो संत प्रगट हुये हैं, उन्होंने वह जुगत निकाली है कि जो उसकी कमाई करे तो सच्चा ब्राह्मण बन जावे और क्षत्रिय सच्चा हो जावे। पर यह लोग अहंकार करके संतों के बचन की प्रतीत नहीं करते हैं। बल्कि निंदा करते हैं। सबब इसका यह है कि यह लोग संसार से निकलना नहीं चाहते क्योंकि नर्क का कीड़ा नर्क में ख़ुश रहता है। इस वास्ते संसारियों को संतों का बचन बुरा लगता है और संत तो उनके भले की बात बताते हैं॥

२१४–मालिक जीव के पास है और यह

मूर्ख जीव उसको बाहर ढूँढ़ता फिरता है यानी काशी और प्रयाग वाले अयोध्या और बृन्दावन और हरिद्वार और बद्रीनाथ में और अयोध्या और बृन्दावन के बासी प्रयाग में भरमते फिरते हैं। यह भरमना सिवाय सतगुरु पूरे के और कोई नहीं छुड़ा सकता है। इस वास्ते सतगुरु का खोज करना चाहिये। और पंडित और भेख आप ही भरम रहे हैं और औरों को भी भरमाते हैं॥

२१५-नर देही छिन-भंगी है। इस के जोबन पर क्या ग़रूर करना। जैसे पतझड़ के मौसम में दरख़्तों के पत्ते झड़ जाते हैं, ऐसे ही यह जोबन भी थोड़े अरसे में जाता रहेगा। इस वास्ते मुनासिब है कि इसको मुफ़्त न खोवे और अपने प्यारे मालिक का पता लगा कर उसकी सेवा और टहल में लगे। और मालूम होवे कि माता, पिता, पुत्र और स्त्री और यार दोस्त और बिरादरी और धन, इन में कोई सच्चा प्यारा नहीं है बल्कि यह सब दुख के दाता हैं। पर संसारी जीव इनको सुख रूप मानते हैं। सो वह

अभागी हैं। और बड़भागी वही हैं, जो सतगुरु पूरे की प्रीति और प्रतीत करते हैं और उनकी सेवा में अपना तन, मन, धन लगाते हैं। इस जवानी में जिसने सतगुरु का खोज कर लिया, वही अक़्लमंद है और जो ग़ाफ़िल रहा, उसको पछताना पड़ेगा॥

२१६–संतों का और पंडितों का मेल न हुआ और न हो सकता है, क्योंकि वह जीवों को बाहर भटकाते हैं और संत अंतर में धसाते हैं। पंडित पत्थर पानी में लगा कर जीव को बे-धर्म करते हैं और कोई कोई वर्णात्मक नाम बताते हैं, सो उसका भेद नहीं दे सकते। और संत ध्वन्यात्मक नाम बताते हैं और उसका भेद, स्वरूप, लीला और धाम विधि पूर्वक समझाते हैं। अगर जीव संतों का बचन माने तो उसका कारज बन जावे और नहीं तो जन्म जन्म भटकता रहेगा॥

२१७–धर्म इस जीव का यह है कि पिता की सेवा करना सो पिता इसका सत्तनाम सत्तपुरुष है और यह उस की अंस है सो इसको मिलता

नहीं, फिर यह सेवा कैसे करे? अब समझना चाहिये कि संत सत्तपुरुष का अवतार हैं। उनकी सेवा करना सत्तपुरुष की सेवा है। पिछले तीन जुगों में वे प्रगट नहीं हुये। अब कलजुग में केवल जीवों के उबार के लिये अवतार धरा है। और कुछ मतलब उनका संसार में आने से नहीं है। जो जीव संस्कारी हैं, वह दर्शन करते और बचन सुनते ही उनके चरनों में लग जाते हैं और बहुतेरों के संस्कार पड़ जाता है और चौरासी का चक्कर उनका भी रफ़्ता रफ़्ता बच जावेगा क्योंकि सिवाय संत के और कोई चौरासी से नहीं बचा सकता और न जीव को उसके निज देश में पहुँचा सकता है॥

२१८—जिनको नाम की प्रतीत नहीं है और बाहर की रहनी अपनी भली प्रकार दुरुस्त रखते हैं और अंतर में भी कुछ सफ़ाई कर रहे हैं तो चाहे जितना जप तप संयम और अभ्यास करें, उन को पूरा फल प्राप्त नहीं होगा और जिन को सतगुरु का बताया हुआ नाम प्राप्त है और उस पर उनका निश्चय पक्का और सच्चा आ गया है

तो उनको जप तप संजम का भी फल मिलेगा और पूरन पद को पावेंगे ॥

॥ दोहा ॥

नाम लियो जिन सब कियो, जोग जज्ञ आचार ।
जप तप संजम परसराम, सभी नाम की लार ॥

यह नाम संत सतगुरु से मिलेगा और इससे कुल विकारों की जड़ कट जावेगी और आहिस्ता आहिस्ता मन और इन्द्रियाँ भी बस में आजावेंगी। और वैसे जो कोई इन्द्रियों के रोकने का इरादा करे तो बहुत मुश्किल पड़ेगी। जो एक को रोकेगा, दूसरी ज़ोर करेगी और यह हाल पोथियों के नाम जपने वालों का दिखलाई देता है कि हरचंद वह जप करते हैं, पर विकार दूर नहीं होते। जो गुरु-मुख नाम यानी संतों से नाम लेकर उसकी आराधना करें तो निश्चय कर आहिस्ता आहिस्ता विकार दूर हो जावेंगे। सिवाय इस नाम के और कोई जतन विकारों के दूर करने के लिये इस कलजुग में नहीं है ॥

२१९—संतों के मत में बैराग की कुछ

महिमा नहीं है। सिर्फ़ गुरु भक्ति की महिमा है। जिसकी गुरु भक्ति पूरी है, उसके सामने बैराग आदिक साधन बिना साधना हाथ बाँधे खड़े रहते हैं क्योंकि उसको यह सतगुरु के दरबार से इनाम में मिलते हैं। पर सतगुरु भक्ति ऐसी होनी चाहिये कि जैसे चकोर को चन्द्र प्यारा है और हिरन को नाद, पतंग को दीपक, मछली को जल। जिसकी ऐसी प्रीति है, उसी का नाम गुरु भक्त है और उसी की ऐसी महिमा है॥

२२०–जो नाम ज़रा सी अपवित्रता से जाता रहे, वह नाम नहीं है। नाम सब से ज़बर है। चाहे जैसी अपवित्रता होवे, उसको पवित्र कर सकता है और चाहे जिस जगह बैठ कर लो, कुछ हर्ज नहीं है। जो बुरे से बुरा स्थान है वह भी नाम के प्रताप से पवित्र हो जावेगा यह नाम संत सतगुरु के पास है। और कहीं नहीं है॥

२२१–कलजुग में सिवाय नाम और सतगुरु भक्ति के दूसरे कर्म करने का हुक्म नहीं है। और जो कोई बर-ख़िलाफ़ इसके करेगा यानी

पिछले जुगों के कर्म में पचेगा, वह अहंकारी हो जावेगा और बजाय निर्मल होने के मैला होगा। वेद और शास्त्र भी यही कहते हैं और संत भी यही फ़रमाते हैं। वेद के नाम की हद्द तीन लोक तक है और संतों का नाम चौथे लोक में पहुँचाता है॥

२२२–जीव को तीन रोग प्रकट और तीन गुप्त लगे हैं। प्रकट औगुणों का उपाय करता है पर गुप्त औगुणों की इसको ख़बर भी नहीं है। उनकी ख़बर संत सतगुरु देते हैं। अगर उनका संग भाग से मिल जावे तो उनकी ख़बर होवे और उनके दूर करने का इरादा भी पैदा होवे। प्रथम रोग जन्म मरन का है और दूसरा झगड़ा और क़ज़िया मन के साथ है जो कि तीन लोक का नाथ है और तीसरा रोग मूर्खता का है कि यह अपने को नहीं जानता है कि मैं कौन हूँ और किस का अंस हूँ और वह कहाँ है। ज़ाहिर है कि कोई बीमारी या झगड़ा किताबों को पढ़ कर दूर नहीं हो सकता, जब तक कि हकीम और हाकिम

वक़्त के रूबरू जाकर हाल अपना न कहे और उनसे दवा और फ़ैसला न करावे। फिर सतगुरु वक़्त के हकीम और हाकिम हैं। उनसे यह रोग दूर हो सकता है। और इसी तरह से मूर्खता का रोग पिछलों की टेक बाँधने से नहीं जा सकता। वक़्त के सतगुरु की सरन लेने से जावेगा यानी वह आँख देंगे, तब इसको अपनी और अपने मालिक की ख़बर पड़ेगी। सिवाय सतगुरु वक़्त के सतसंग के और कोई इलाज नहीं है॥

२२३–शब्द सूक्ष्म है और जीव का स्वरूप स्थूल हो गया है। फिर जीव शब्द में एक दम कैसे लगे? स्थूलता के दूर करने का उपाय सतगुरु भक्ति है। और जब तक सतगुरु भक्ति दुरुस्ती से न बनेगी, तब तक शब्द में लगने का अधिकारी न होगा॥

२२४–सतगुरु की पहिचान मुश्किल है। जिसने सतगुरु को पहिचाना, वह निर्भय हो गया। क्योंकि जिस किसी की दुनिया के हाकिम से पहिचान हो जाती है, वह किसी को ख़्याल में नहीं

लाता। और सतगुरु कुल्ल के मालिक हैं, उनकी पहिचान जिसको आगई, उसको फिर किसका डर रहा ? सो यह बात किसी बिरले जीव को हासिल होगी। और जीवों का तो यह हाल है कि दुनिया के हाकिम के डर से सतगुरु को छोड़ देते हैं तो फिर सतगुरु की पहिचान कहाँ से होवे ? असल में जीव की ताक़त नहीं है कि सतगुरु को पहिचान सके। दुनिया के हाकिम अपनी हुकूमत से सब को डराते हैं और सतगुरु अपने को प्रकट नहीं करते हैं, बल्कि संसार में जीवों की तरह से बरतते हैं, इस वजह से जिस पर उनकी दया है, वही पहिचान सकता है। दूसरे की ताक़त नहीं है॥

२२५–सतगुरु के बचन और लीला तो सब को प्यारे लगते हैं, पर सतगुरु किसी बिरले को प्यारे लगते हैं। जिनकी प्रीति बचन और लीला के आसरे है, उनका भरोसा नहीं है। पक्की प्रीति उनकी है, जिनको सतगुरु से प्रीति है। पर बचन और लीला की प्रीति वालों में से सतगुरु

की प्रीति वाले निकल आते हैं। यह भी सतगुरु से प्रीति लगाने की सीढ़ी है।

२२६– एक एक को बड़ा कहता है यानी जिससे जिसका स्वार्थ है, वह उसी की तारीफ़ करता है। पर इस तारीफ़ का ऐतबार नहीं है। यह ऐसे है जैसे गधे का रेंकना कि शुरू में तो ख़ूब ज़ोर से बोलता है और आहिस्ता आहिस्ता कम हो जाता है। जिसका यह हाल है, उसकी प्रीति का ऐतबार यानी भरोसा नहीं। प्रीति उसी की सच्ची है जो शुरू से आख़ीर तक एक सी रहे॥

२२७–जब से यह जीव पैदा हुआ है, तब से काल इसके संग है। गोया यह सुरत काल के संग ब्याही गई है। जब पति दुलहिन के लेने को आता है तब क़ायदा है कि वह रोती है और रोने से मुराद है कि मुझ को जाने न देवें, पर कोई नहीं रोक सकता है। इसी तरह जब काल आवेगा, यह सुरत हरचन्द रोवेगी, पर कोई मदद नहीं दे सकेगा और वह ऐसे रास्ते पर जाकर डालेगा जो बाल से भी बारीक है और चींटी की भी

ताक़त नहीं जो उस पर चले और सुरतें उस रास्ते पर जाने में कट कट के नीचे जहाँ नर्कों के कुंड भरे हैं गिर गिर पड़ती हैं और जैसी तकलीफ़ होती है, उसका बयान नहीं किया जाता है। इससे संत सतगुरु जीवों को बार बार दया करके समझाते हैं कि बाल से भी बारीक़ रास्ता है और जो उसका ख़ौफ़ है तो अपनी असलियत के हासिल करने में मेहनत करो और उपाय उसका सिवाय सतगुरु पूरे के और किसी के पास नहीं है। जब जीव सतगुरु की सरन लेगा तो वह जो करनी मुनासिब है, करा लेंगे और ऐसे भयानक रास्ते से बचा कर अपनी गोद में बैठा कर निज स्थान में जहाँ सदा आनन्द प्राप्त होगा, वहाँ पहुँचा देंगे। सिवाय इसके और कोई उपाय नहीं है॥

२२८–यह सच है कि नाम का प्राप्त होना बहुत मुश्किल है, पर नाम के प्राप्ति वालों की सरन लेना तो सहज है और हमेशा से यही चाल चली आई है कि हरएक को नाम नहीं प्राप्त होता,

पर सरन लेते चले आये हैं और सरन में बहुत आनंद है। संतों के हाथ भी यह जुगत नहीं लगी। वह भी आप बन बैठे। पर यह जुगत जीवों के हाथ लगी है॥

२२९–जो कोई चाहे कि संत सतगुरु की पहिचान कर ले और जो बातें कि ग्रन्थों में लिखी हैं, उनसे विधि मिलावे तो हरगिज़ नहीं मिलेगी और पहिचान न होगी। उसको चाहिये कि कोई दिन उनका संग करे, तब पहिचान आवेगी। और कोई उपाय पहिचान करने का नहीं है॥

२३०–जिसने नर देही पाकर आत्म तत्त्व को जो इसमें असल यानी सार वस्तु है, न पाया और संसार के भोगों में इस नर देही को खोया, वह जीव पशु हैं। मनुष्य स्वरूप हुये तो क्या? पर काम पशु का करते हैं। सो यह बात बे सतगुरु पूरे के प्राप्त नहीं होगी। प्रथम तो सतगुरु पूरे का मिलना मुश्किल है और जो मिले तो भाव नहीं आता है, क्योंकि आज कल भेखों का यह हाल है कि अपने को पूरन ब्रह्म कहते हैं और

जीवों को ज्ञान सिखा कर भरमाते हैं और जो उनसे दरियाफ़्त किया जावे कि तुमने ब्रह्म को किस जुक्ति से पाया तो उसका जवाब नहीं देते हैं। इस वास्ते उनका ब्रह्म कहना झूठा है और उनका मार्ग भी जो विद्या और बुद्धि के विचार का है, मन के पेट का है। उससे जीव का उद्धार नहीं होगा। बड़भागी वही जीव हैं, जिनको सत-गुरु पूरे मिल गये और निश्चय और प्रतीत अपनी बख़्शी है और सेवा में लगाया है, क्योंकि जीव की ताक़त नहीं है जो निश्चय ला सके या उनकी सेवा में ठहर सके। यह बात भी उनकी मेहर और दया से हासिल होगी॥

२३१–पिछले पापों का अहंकार रूपी मैल इस जीव पर चढ़ा हुआ है। इस सबब से दुख सुख पाता है। जब सतगुरु वक़्त के सन्मुख आवे तो वे अपने दया रूपी जल से मैल धोकर इस जीव को निर्मल करलें और जो सदा सुख का स्थान है, वहाँ पहुँचा दें। पर शर्त यह है कि यह उनके सन्मुख ठहरा रहे और जो एक रोज़ को

आया और एक महीने को ग़ैर-हाज़िर हो गया तो सतगुरु क्या करें ? यह बात उसी से बनेगी, जिसको दर्द परमार्थ का होगा। बे-दर्दी का काम नहीं है ॥

२३२–नास्तिक जो मालिक के होने से इन्कार करते हैं, सो ग़ल्ती में हैं। मालिक इस तरह गुप्त है, जैसे काठ में अग्नि, पर उनको नज़र न आया। इस सबब से नास्तिक हो गये। अगर सतगुरु खोजते और उनसे जुगत लेकर अपने मन को मथ कर देखते तो उनको मालिक के दर्शन की दृष्टि हासिल होती और कृतघ्नता यानी ना-शुकरी के पाप से बच जाते ॥

२३३–जैसे मलयागिरि का जो दरख़्त है, उसके जो दूसरा दरख़्त नज़दीक होता है, वह उसको अपने समान ख़ुशबूदार कर लेता है, इसी तरह से जो जीव साध संग में आये, वह भी संसार की तापों से बच कर एक रोज़ साध रूप हो जाते हैं। बड़भागी वही हैं जिनको साध संग प्राप्त है और उन्हीं की नर देही सुफल है और जिनको साध संग प्राप्त नहीं है और न उसका

चाह है, वह पशु के समान हैं। नर देही मिल गई तो क्या? उसका फल तो प्राप्त न हुआ। जैसे सूम की हालत कि हज़ारहा रुपये पैदा करे, पर खाये न खर्चे, तो ऐसे धनवान होने से क्या फ़ायदा हुआ? अन्त को जाने वह धन किस के हाथ पड़ा और क्या हुआ और जो बासना उसकी दिल में रही तो साँप बन कर बैठा और यह नहीं हो सकता कि बासना न रहे। फिर देखो कैसी नीच योनि पाई और चौरासी के चक्कर में पड़ा। इसी तरह जिन को नर देही प्राप्त है और उन्हों ने उसको संतों की प्रीति और सेवा में नहीं लगाया तो अन्त को चौरासी भोगेंगे॥

२३४–वेद मत वालों का कर्म उपासना और ज्ञान, संतों के सिर्फ़ कर्म स्थान तक पहुँचता है क्योंकि संतों का कर्म बग़ैर त्रिकुटी तक पहुँचे पूरा नहीं होता है और सत्तलोक तक उपासना रहती है और अनामी पद में ज्ञान प्राप्त होता है। पर संत कभी अपने को ज्ञानी नहीं कहते हैं। हमेशा भक्ति रखते हैं। और यह जो अपने को

ज्ञानी कहते हैं, वह असल में वाचक हैं, क्योंकि वह वक्त सवाल के जवाब नहीं दे सकते हैं कि उनको ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ यानी बिना कर्म और उपासना के ज्ञान का होना नहीं हो सकता है सो उसका भेद वह बिल्कुल नहीं जानते क्योंकि उन्होंने किया नहीं, सिर्फ़ पोथियाँ पढ़ कर ज्ञान के बचन सीखे हैं। इस वास्ते झूठे ज्ञानी हैं। और जो जीव उनका बचन मानते हैं, वह अपना बिगाड़ करते हैं ॥

२३५–सतगुरु वक़्त की हर हालत में मुख्यता है। पहिले उनके चरनों में सच्ची प्रीति करने से सफाई स्थूल की हासिल होगी, जब अधिकारी नाम के श्रवण का होगा और फिर नाम का सूक्ष्म रूप और सतगुरु का सूक्ष्म रूप और अपना सूक्ष्म रूप, सब एक रूप नज़र आवेंगे। पर यह बात सतगुरु की पूरी प्रीति से हासिल होगी ॥

२३६–जिन को अब नर देही मिली है और वह सतगुरु का खोज नहीं करते हैं तो वह

चौरासी जावेंगे और फिर नर देही उनको नहीं मिलेगी। इस वास्ते अभी मौक़ा है, अपना काम बनाने का। जो यह मौक़ा हाथ से जाता रहा तो फिर मौक़ा नहीं मिलेगा ॥

२३७—बाहर की सेवा और टहल अक्सर जीव कर सकते हैं। इससे सच्चे और झूठे की परख नहीं हो सकती। असल पहिचान सच्चे की यह है कि जिसको शब्द बताया जावे और उसमें उसकी सुरत लग जावे तो उसी की प्रीति सच्ची समझना चाहिये ॥

२३८—सतगुरु वक़्त से किसी मुक़ाम या सत्तलोक का माँगना नहीं चाहिए। उनसे बारंबार यही प्रार्थना करे कि अपने चरन में रखिये। इससे ऊँचा और बड़ा स्थान कोई नहीं है ॥

२३९—संसारी पदार्थों को जो जीव आप भोगते हैं तो अंत को चौरासी जाने के अधिकारी होते हैं और जो जीव उन्हीं पदार्थों को संत सतगुरु और साध के भोग में रक्खें तो परम पद के अधिकारी होते हैं, क्योंकि संतों की आशक्ति

न तो उन पदार्थों में है और न अपनी देह में है, सिर्फ़ जीवों के उद्धार के वास्ते देह स्वरूप धरा है। पर अपने मुक़ाम की सैर हर रोज़ देखते हैं। और जीव पदार्थों और देह में आशक्त हैं। पर उन में से जो उनकी सेवा और टहल में अपना तन मन और धन ख़र्च करेंगे, वह चौरासी से बचेंगे और जो अपने खाने पीने और ऐश और आराम में उम्र खो रहे हैं, वह चौरासी जावेंगे॥

२४०–जब तक तत्त्व से तत्त्व नहीं मिलेगा, काम पूरा न होगा। और जो पाँच तत्त्व स्थूल हैं, इनका कारण सुरत है और सुरत का कारण शब्द है। इन पाँचों के झगड़े में पड़ने से कुछ फ़ायदा न होगा। जो सुरत तत्त्व है, उसको शब्द तत्त्व में मिलाने से काम पूरा होगा। पर यह बात बे दया सतगुरु पूरे के हासिल न होगी। इस वास्ते पहिले सतगुरु का खोज और उनकी प्रीति करना चाहिये॥

२४१–जैसे पपीहा स्वांति की बूँद के वास्ते बन बन फिरता है और किसी बूँद को क़बूल नहीं

करता है क्योंकि और बूँद से उसकी प्यास नहीं जाती है तो मालिक भी उसकी सच्ची तड़प को देख कर स्वाँति बूँद बरसाता है और उसकी प्यास को बुझाता है। इसी तरह जिनको सतगुरु और नाम का खोज सच्चा है और उनकी तलाश में रहते हैं, उनको सतगुरु और नाम प्राप्त होंगे। हर एक का काम नहीं है जो इस रास्ते पर क़दम रक्खे ॥

२४२—सेवक कहता है कि मेरी यह आर्ज़ू है कि मैं अपने मन को मेंहदी के समान पीस कर सतगुरु के चरनों में लगाऊँ, पर सतगुरु अभी क़बूल नहीं करते, ख़ैर मैंने तो अपने मन को मेंहदी के तुल्य पीस कर तैयार कर रक्खा है, जब उनकी मौज होवे, तब चरनों में लगावें। यह धर्म सेवक का है कि इतनी मेहनत करके मन को पीस डाला और फिर भी जो सतगुरु ने मंज़ूर नहीं किया तो दीनता नहीं छोड़ी, मौज पर रहा। न कि ऐसी हालत होवे कि ज़रा सी सेवा करी और जो मंज़ूर न होवे तो अभाव आ जावे।

इसका नाम सेवकाई नहीं है। यह तो सतगुरु को सेवक बनाना है। जब यह हालत है तो मन कैसे पीसा जावेगा ? पर भाग से जो सतगुरु दयाल मिल जावें तो अपनी कृपा से सब दुरुस्ती सेवक की कर लेंगे॥

२४३–जब दाता किसी को कुछ देता है, तब हाथ निकालता है। इसी तरह मालिक जब दया करता है, तब मेंह बरसाता है। पर इसका फ़ायदा संसार को है। और जब परमार्थियों पर दया करता है, तब प्रेम की वर्षा करता है। जिस किसी में सब गुण हैं और प्रेम नहीं, तो वह ख़ाली है। और जिस में कोई गुण नहीं, पर प्रेम है, वही दरबार में दख़ल पावेगा। इस वास्ते मुख्य प्रेम है। और यह प्रेम बग़ैर सतगुरु भक्ति के हासिल न होगा॥

२४४–संत जो उस पद को बे अंत कहते हैं सो यह बात नहीं है कि उनको उसका अंत नहीं मालूम है या नहीं पाया। इसका मतलब यह है कि वहाँ का जो आनन्द है, वह बे अंत

है। और संत उस मुक़ाम पर जल मछली की तरह से रहते हैं। अब जो कोई यह कहे कि मछली ने जल को नहीं लखा या उसका अंत नहीं पाया, यह कहना ग़लत है। और जो ऐसे हैं कि जल में जल रूप हो गये, उनकी कुछ तारीफ़ नहीं है। महिमा उन्हीं की है जो जल में मछली रूप रह कर उसका आनन्द लेते हैं॥

२४५–काल के ग्रसने से जीव की मोक्ष नहीं हो सकती क्योंकि सुरत चैतन्य है, उसको काल नहीं खा सकता, देही को खाता है, किसी को जल द्वारा, किसी को अग्नि द्वारा, और किसी को पृथ्वी द्वारा। काल का और जीव का मेल नहीं है, क्योंकि जब से यह दोनों सत्तलोक से आये हैं, उन पर ख़ोल चढ़ते चले आये हैं। काल उलट नहीं सकता है, पर जिस जीव को सतगुरु मिल जावें तो उन की दया और सेवा के प्रताप से उसके ख़ोल उतर सकते हैं और फिर उलट कर सत्तलोक में भी जा सकता है। बिना ख़ोलों के उतरे अपने घर में नहीं पहुँच सकता और

खोल बिना शब्द और सतगुरु सेवा और उनकी प्रीति के नहीं उतरेंगे ॥

२४६-जब तक जीव अलख के पलक के परे न पहुँचेगा, तब तक इसको मुक्ति प्राप्त न होगी। अलख नाम मन और काल का है, क्योंकि काल जीव को खाता चला जाता है और लखा नहीं जाता। अगर जीव सच्चा दर्दी है तो सब जतन छोड़ कर सतगुरु पूरे की सरन हो जावे, तब काम पूरा होगा क्योंकि संतों ने इस अलख को लखा है और वही इसको पलक के परे पहुंचा सकते हैं। तीन लोक और जितने अवतार और देवता हुए हैं, अलख के पलक के बाहर नहीं गये और संत उसके परे पहुंचे हैं। इस वास्ते जो उनकी सरन लेगा, वह काल की हद्द से बाहर हो जावेगा और जो पिछलों की टेक में रहेगा और वक़्त के पूरे सतगुरु पर भाव और निश्चय नहीं लावेगा, वह संतों के निज भेद को नहीं पावेगा और काल के जाल से बाहर न होगा ॥

२४७—ऐसा कहा है कि हरि के चरन की सरन लेने से जीव का उद्धार होगा। तो अब विचारो कि जीव उस हरि को कहाँ ढूँढे। उसको तो विदेह और अरूप कहते हैं। और जब चरन सरन कही तो चरन होंगे और जो चरन होंगे तो देह भी होगी तो ऐसा हरि कौन है? संत कहते हैं कि इस कहने से मतलब सतगुरु की सरन लेने से है क्योंकि हरि गुरु एक हैं। इस वास्ते सतगुरु वक़्त की सरन लेना चाहिये, तब वह नाम जिस को पतित उधारन कहते हैं, मिलेगा और उस की कमाई साध संग से होगी यानी सब कुसंग छोड़ करके पहिले साध संग करे, तब कमाई बन पड़ेगी। और मालूम होवे कि माता पिता सुत स्त्री और संसारी जीवों का संग, कुसंग में दाख़िल है क्योंकि इनके संग से न सतगुरु की सरन ली जावेगी और न नाम मिलेगा और न साध संग बन सके। पर जो सतगुरु पूरे अपनी मेहर और दया करें तो सब काम बनवालें॥

२४८—असल में संतों के मत की रीति और वेद

मत की रीति में विरोध नहीं है, पर सिद्धान्त संतों का वेद के सिद्धान्त से बहुत ऊँचा है यानी वेद में जो कहा है कि कर्म और उपासना करना चाहिये, सोई संत भी कहते हैं कि पहिले सतगुरु की सेवा, तन मन धन से करना और उनका सतसंग करना, यह कर्म है और जो सतगुरु अंतर में नाम यानी शब्द का भेद बतावें, उसमें सुरत का लगाना उपासना है। वेद में जीव और ईश्वर के तीन तीन स्वरूप लिखे हैं यानी विश्व, तैजस और प्राज्ञ। यह तीन रूप जीव के और वैराट हिरनगर्भ और अव्याकृत, ये तीन रूप ईश्वर के हैं। हाल के ज्ञानी ईश्वर को नहीं मानते। उनकी कहन है कि एक जमाअत का नाम गल्ला है या हज़ार आदमी की फ़ौज को पलटन कहा, ऐसे ही ईश्वर को समझते हैं। जब वह अलेहदा अलेहदा हो गये, फिर वह नाम भी जाता रहा। इस हिसाब से ईश्वर कहाँ रहा ? और जब ईश्वर नहीं ठहरा तो उपासना किसकी करें क्योंकि बिना नाम, रूप और लीला और धाम के उपासना नहीं

बन सकती है। इस सबब से यह लोग ग़ल्ती में पड़े हैं और इसी सबब से इन का ज्ञान भी बाचक ज्ञान है। बिना कर्म और उपासना के पोथी पढ़ कर और बुद्धि से विचार करके हासिल किया है। और जो किसी को उपासना करके सच्चा ज्ञान भी हुआ तो भी वह सन्तों के कर्म की हद्द में है। निज देश संतों का उसके बहुत आगे और ऊँचा है। और जो कर्म कि वेद में लिखे हैं, वह पिछले जुग के हैं, न तो वह जीवों से विधि पूर्वक अब बन सकते हैं और न उनमें वह फल है। अब जो कोई कर्म करे, वह भी संतों के द्वारा और जो उपासना करे, वह भी संतों की दया लेकर, तब काम पूरा बनेगा यानी वेद के सिद्धान्त और उसके परे पहुँचेगा। और तरह से इस वक़्त में कुछ काम नहीं बनेगा॥

२४६—मालिक के दरबार में सिवाय भक्त के और कोई दख़ल नहीं पा सकता है। जितने ऋषि, मुनि, योगी, यती, ज्ञानी, संन्यासी, परम-हंस हुए और अपने मत के पूरे भी थे, पर उनको मालिक

के दरबार में दख़ल नहीं मिला, क्योंकि अहंकारी थे और निगुरे। उनको संत सतगुरु नहीं मिले और इस वक़्त में जो लोग उनके ग्रन्थ पढ़ कर अपने को पूरा ख़्याल करते हैं और जैसी करनी उन लोगों ने करी, उसका चौथा हिस्सा भी नहीं करते और संत सतगुरु की निंदा करते हैं, वह कैसे उस दरबार में दख़ल पावेंगे? अब सब को चाहिये कि इस बात को निश्चय कर के मानें कि जो संत सतगुरु की भक्ति करते हैं, वह कुल मालिक की भक्ति करते हैं क्योंकि पूरे सतगुरु अपने वक़्त के में और कुल मालिक में भेद नहीं है। दोनों का एक रूप है॥

२५०–जिसको पूरे सतगुरु मिले और वह उनकी सेवा और सतसंग और प्रीति और प्रतीत भी करता है, पर इस अरसे में पूरे सतगुरु गुप्त हो गये और इसका काम अभी पूरा नहीं हुआ यानी कुछ अंतर में नहीं खुला तो जो उसको चाह है कि मेरा काम पूरा होवे तो जो सतगुरु के बनाये हुये सतगुरु मिलें तो उनमें वैसी ही प्रीति

और प्रतीत और उन की सेवा और सतसंग करे और सतगुरु पहिले को उन्हीं में मौजूद समझे, क्योंकि शब्द स्वरूप करके संत सतगुरु और संत एक ही हैं, दो नहीं हैं और देह स्वरूप कर के दो दिखलाई देते हैं ॥

और पिछलों का अक़ीदा यानी मानता इस सबब से बे-फ़ायदा है कि उन से प्रीति नहीं हो सकती, न तो उनको देखा है, न उनका सतसंग किया और जो सतगुरु मिले नहीं तो उनके चरनों में प्रीति नहीं हो सकती। इस वास्ते अनुरागी यानी शौक़ीन सेवक को चाहिये कि सतगुरु प्रत्यक्ष से यानी अपने वक़्त के से प्रीति करे और उनमें और सतगुरु पहिले में सिवाय देह स्वरूप के भेद और फ़र्क़ न करे और अपना काम पूरा करवावे। और जो उसे चाह अपनी तरक़्क़ी की नहीं है तो सतगुरु पहिले की प्रीति और प्रतीत दिल में रक्खे हुए उन्हीं का ध्यान और जो जुक्ति उन्होंने बताई है, उसका अभ्यास करे जावे। अंत को वे सतगुरु उसी रूप से उस का कारज जिस क़दर होगा,

उस क़दर करेंगे। पर पूरा कारज नहीं होगा। फिर उसको जन्म धारन करना पड़ेगा और फिर सतगुरु मिलेंगे, तब उनकी भक्ति और सतसंग करके कारज पूरा होगा।

जब सतगुरु वक़्त गुप्त होते हैं, वह उस वक़्त किसी को अपना जा-नशीन मुक़र्रर करके उसमें ख़ुद आ समाते हैं और ब-दस्तूर जीवों का कारज करते रहते हैं। और जब मौज ऐसी कार्रवाई की नहीं होती है, तब अपने धाम में जा समाते हैं। इस वास्ते सेवक अनुरागी को ऐसे सतगुरु में फ़र्क़ न करना चाहिये। मगर जो सिर्फ़ टेकी सेवक हैं, वह सतगुरु दूसरे की भक्ति में नहीं आवेंगे। इस वास्ते उनका कारज भी जिस क़दर कि सतगुरु पहिले के रूबरू हो गया होगा, उसी क़दर होगा। आगे तरक़्क़ी और दुरुस्ती नहीं होगी॥

२५१–जिस शख़्स को कि शुरू में ऐसे गुरु मिले कि जिनको शब्द का भेद मालूम नहीं है और फिर सतगुरु शब्द भेदी मिले तो उसको

चाहिये कि पहिले गुरु को छोड़ कर सतगुरु की सरन लेवे। क़ौल

॥ दोहा ॥

झूठे गुरु की टेक को, तजत न कीजे बार।
द्वार न पावे शब्द का, भटके बारम्बार ॥

बल्कि उस गुरु को भी मुनासिब है कि अपने चेले के साथ सतगुरु की सरन में आवे और उन से अपने जीव का उद्धार करवावे ॥

२५२–जिसको शब्द भेदी गुरु मिलें पर वे अभी पूरे नहीं हैं, अभ्यासी हैं और फिर उसको पूरे सतगुरु शब्द मार्गी मिलें तो उसको चाहिये कि पहले गुरु को पूरे सतगुरु में दाख़िल समझ कर सतगुरु की सरन लेवे और उसके गुरु को भी ज़रूर है कि वह भी चेले का संग देवें और सतगुरु की सरन लेवें और जो वे ईर्षावान या अहंकारी हैं तो वह सरन में न आवेंगे तो चेले को चाहिये कि उनसे कुछ ग़रज़ और मतलब न रक्खे और आप पूरे सतगुरु की सरन में आवे ॥

२५३–जब कि सतगुरु को तुम मालिक कह चुके तो फिर और मालिक कहाँ से आया कि जिसको तुम मानते हो और बड़ा समझते हो ? तुम्हारे तो एक सतगुरु ही मालिक हैं। देह रख कर जो स्वरूप दिखलाया है, पहिले इसी से काम होगा। दूसरा स्वरूप उनका सच्चे मालिक यानी सत्तपुरुष राधास्वामी का स्वरूप है और वही तुम्हारे सच्चे बादशाह हैं॥

२५४–ज़िक्र है कि दक्षिण में एक मुक़ाम पर एक फ़क़ीर साहब जो पूरे गुरु थे, विराजते थे और एक चेला उनका निहायत गुरुमुख था। एक रोज़ सतसंग उनका हो रहा था। तब एक मुसलमान मौलवी जो मक्के के जाने के वास्ते तैयार था, आया और उसने फ़क़ीर साहब से कहा कि मक्का और काबा बहुत बुज़ुर्ग और उत्तम जगह है, आप के सेवकों को भी वहाँ दर्शन के वास्ते जाना चाहिये और कई तरह से उसकी तारीफ़ और महिमा करने लगा। उस वक़्त जो बड़ा चेला फ़क़ीर साहब के पास बैठा था, वह बहुत

ख़फ़ा हुआ और उस मौलवी की गर्दन पकड़ कर उसका सिर फ़क़ीर साहब के चरनों में रख दिया और कहा कि देख, करोड़ों मक्के और काबे इन चरनों में मौजूद हैं ॥

जब फ़क़ीर साहब उठ कर वास्ते हाजत के ज़रा बाहर गये, तब उस सेवक से और मौलवी से ख़ूब चर्चा हुई। जब फ़क़ीर साहब आये, तब मौलवी ने शिकायत की। उस वक़्त गुरु साहब ने सेवक को समझाया कि नहीं, काबा बहुत अच्छा है। जैसा कि मौलवी कहता है, वैसा ही है और दर्शन करने योग्य है। जा, तू भी इसी वक़्त मौलवी के साथ जा। वह सेवक पूरा गुरुमुख था। हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया और कहा कि जैसे हुक्म गुरु साहब का। उसी वक़्त मौलवी के साथ जहाज़ पर गया ॥

जब कुछ दूर जहाज़ चला, तब बड़ा तूफ़ान आया और वह जहाज़ टूट गया और सब लोग जो जहाज़ पर थे, डूब गये। पर यह सेवक एक तख़्ते पर बैठा रह गया और यह भी थोड़ी देर में

डूबने को था कि एक हाथ समुद्र में से निकला और आवाज़ हुई कि जो तू अपना हाथ दे, तो तुझे बचालूँ। तब सेवक ने पूछा कि तुम कौन हो? आवाज़ आई कि मैं पैग़म्बर साहब हूँ। तब सेवक ने कहा कि मैं नहीं जानता कि पैग़म्बर साहब कौन हैं। मैं सिवाय अपने गुरु साहब के दूसरे को नहीं जानता हूँ। तब वह हाथ छिप गया॥

फिर थोड़ी देर पीछे जब कि यह सेवक तख़्ते पर बहा जाता था और ग़ोते भी खाता जाता था, दूसरा हाथ निकला और कहा कि हाथ पकड़ ले, तुझको बचा लेवें। सेवक ने पूछा कि तुम कौन हो। आवाज़ आई कि हम ख़ुदा यानी ईश्वर हैं। इस ने वही जवाब दिया कि मेरा ख़ुदा तो मेरा गुरु है। दूसरे ख़ुदा को मैं नहीं जानता। तब वह हाथ भी छिप गया॥

ज़रा देर के पीछे फिर तीसरा हाथ निकला। यह हाथ उसके दादा गुरु का था। उन्हों ने कहा कि मैं तेरे गुरु का गुरु हूँ। मुझे तू अपना हाथ दे, मैं तुझको निकाल लूँ। तब उस सेवक ने जवाब

दिया कि मैं सिवाय अपने गुरु के अपना हाथ किसी को नहीं दे सकता हूँ। कोई क्यों न होवे। चाहे मैं डूब जाऊँ, चाहे जिंदा रहूँ, मैं सिवाय अपने गुरु के किसी के कहने से नहीं निकलूँगा। तब वह हाथ भी गुप्त हो गया॥

फिर आप गुरु साहब आये और उन्होंने सेवक को गले लगा लिया और फ़ौरन अपने मकान पर ले आये॥

अब मालूम करो कि पैग़म्बर साहब और खुद ईश्वर और गुरु के गुरु ने जो आवाज़ दी थी, वह इसके इम्तिहान और परीक्षा के वास्ते थी। और जब वह गुरुमुखता में सच्चा और पूरा उतरा, उस वक़्त गुरु साहब आप प्रगट हुए और उसको बचा लिया। अब जीवों को चाहिये कि जहाँ तक बने इसी तरह की मज़बूत और सच्ची प्रीति और प्रतीत सतगुरु की करें॥

२५५–जो पतिव्रता स्त्री है, वह सिवाय अपने पति के किसी को मर्द नहीं जानती। और सब को ना-मर्द समझती है यानी नपुंसक जानती

है। बल्कि अपने माँ बाप की भी प्रीति भूल जाती है। ऐसे ही जो सतगुरु के सेवक हैं, उनको भी चाहिये कि सिवाय अपने सतगुरु के और किसी को अपना मालिक और मुक्तिदाता न समझें। और जो पिछले संत हुए हैं, उनको जब तक मानें कि जब तक उनको अपने वक़्त के पूरे गुरु नहीं मिलें। और जब सतगुरु मिल जावें, फिर पतिव्रता की तरह जो कुछ समझें, उन्हीं को समझें। और दूसरे पर भाव न लावें॥

२५६—जो कि बिचौलिया होते हैं, वह सगाई और शादी करा कर स्त्री और पुरुष को मिला देते हैं और उस स्त्री को समझाते हैं कि देख तू सिवाय अपने पति के और किसी से प्रीति मत करियो और हम से भी इतनी ही प्रीति रख कि जैसे औरों से बरतती है। इसी तरह गुरु नानक और पिछले संत हुए कि उन्होंने बिचौलिया का काम किया यानी अपने बचन और ग्रन्थों में लिख गये हैं कि पूरे सतगुरु का खोज करके उनकी सरन पड़ो। जिन्होंने उनके बचन

माने और सतगुरु पूरा खोज कर उनकी सरन ली, उनको चाहिये कि अब सतगुरु को ही अपना मालिक और पति समझें ॥

२५७–जीव को चाहिये कि हमेशा सतगुरु की कृपा और उनकी दया को ख़याल में रक्खे और विचारे कि सतगुरु ने कैसे चौरासी से बचाया है और कर्म और भर्म काटे यानी तीर्थों और व्रतों से अलग किया और भटकना से छुड़ाया और शब्द मार्ग सच्चा दृढ़ाया, तब उसकी प्रीति सतगुरु से लगेगी और भर्म नहीं उठेंगे। इस वास्ते हमेशा सतगुरु की दया और मेहर को चित्त में रखना ज़रूर है ॥

२५८–विद्यावान गुरु से जीव के संशय दूर नहीं हो सकते। अलबत्ता सभा बिलास ख़ूब हो जाता है। जब एक श्लोक के चार या ज़्यादा अर्थ किये तो जीवों को और संशय में डाला कि वह कौन से अर्थ को पकड़ें। जो बात कि जीव के कल्याण के वास्ते दरकार थी, छाँट कर न कही तो जीव कैसे मुक्ति का रास्ता पावें और

क्या जतन करें ? इस वास्ते चाहिये कि नेष्ठावान गुरु खोजो। जब तक वह नहीं मिलेंगे, कारज नहीं होगा। और यह सोने के समान जो नर देही मिली है, इस को नमक और आटे के समान पंडित और भेष और बाचक ज्ञानियों के संग में बे-क़दरी से ख़र्च न करे और सतगुरु पूरा खोज कर उनकी सेवा और सतसंग करे॥

२५९-जो लोग कि सत्तनाम और राम और हरनाम का सुमिरन करते हैं और सतगुरु से प्रीति नहीं करते हैं, यह करनी उनकी बृथा जावेगी, क्योंकि नाम सतगुरु के आधीन है। जो सतगुरु को पकड़ेगा, उसको नाम और राम भी मिल जावेगा और जो सतगुरु से नाम लेकर सतगुरु की प्रीति न करेगा, उसको भी नाम नहीं मिलेगा॥

२६०-संतों का नाम अगोचर है और वेद का नाम गोचर है। जो नाम गोचर है, वह सत्य नाम नहीं हो सकता। और जब नाम असत्य हुआ तो उसका स्थान और रूप भी असत्य

हुआ। और संतों का नाम भी सत्य है और रूप व स्थान भी सत्य है। क्योंकि जो वर्णात्मक नाम है, उसके आसरे सफ़ाई हो सकती है, पर सुरत नहीं चढ़ सकती है और ध्वन्यात्मक नाम के आसरे सुरत पिंड से ब्रह्मांड को चढ़ कर अपने निज स्थान यानी सत्तलोक में पहुँच सकती है। सो वह ध्वन्यात्मक नाम सिवाय संतों के और किसी से हासिल नहीं हो सकता है। जिसके बड़े भाग हैं, उसको यह नाम प्राप्त होगा॥

२६१–किसी तरह की जब तकलीफ़ होवे, तब हुज़ूर सतगुरु को याद करे। वे फ़ौरन सेवक के पास निज रूप से मौजूद हैं। काल और कर्म उस रूप के पास नहीं आ सकते हैं। दूर ही दूर से डराते हैं और आप भी डरते हैं। फिर सतगुरु की गोद में किसी तरह का डर नहीं है, सतगुरु हर वक़्त रक्षक मौजूद हैं और सम्हाल अपने सेवक की करते रहते हैं। मौज और मसलहत उनकी सेवक नहीं जान सकता है, पर वे ख़ूब जानते हैं। और जो मौज होवे तो सेवक को भी

जना देवें। शब्द रूप, सुरत रूप, प्रेम रूप, आनन्द रूप, हर्ष रूप और फिर अरूप हैं॥

२६२–सतगुरु अपनी दया से सदा जीव की सम्हाल करते रहते हैं और चाहते हैं कि सब सेवक उनके चरनों में मुख्य प्रीति और प्रतीत करें, पर यह मन नहीं चाहता है कि ऐसी हालत जीव को प्राप्त होवे। इस वास्ते वह भोगों की तरफ़ खैंचता है और अपने हुक्म में जीव को चलाना चाहता है। इस वास्ते जीवों को चाहिये कि मन की घात से बच कर सतगुरु के चरनों की सम्हाल रक्खें और उसके जाल में न पड़ें। वास्ते परख और सम्हाल के थोड़ा सा हाल गुरुमुख और मनमुख की चाल का लिखा जाता है। उससे अपनी हालत की परख करते हुए चलना चाहिये॥

१–गुरुमुख—हर एक के साथ सच्चा बरतता है और बुराई की बातों से बचता है और किसी को धोखा नहीं देता है और जो काम करता है,

सतगुरु के लिये और उनकी दया के भरोसे पर करता है॥

मनमुख–चतुराई और कपट से बरतता है और अपने मतलब के लिये औरों को धोखा देता है और अपनी बुद्धि और चतुराई का भरोसा रखता है और अपने आपको प्रगट करना चाहता है॥

२–गुरुमुख–मन और इन्द्रियों को रोकता है और चित्त से दीन रहता है और तान के बचन को सहता है और नसीहत को प्यार से सुनता है और अपनी बड़ाई नहीं चाहता है॥

मनमुख–मन और इन्द्रिय का मर्दन पसन्द नहीं करता है और किसी से दबना या उसका हुक्म मानना नहीं चाहता है और दूसरे की बड़ाई की बरदाश्त नहीं रखता है॥

३–गुरुमुख–किसी पर ज़बरदस्ती नहीं करता और सब की ख़ातिरदारी और सेवा करने को तैयार रहता है और औरों का उपकार करना चाहता है और अपनी पूजा और प्रतिष्ठा की चाह

नहीं रखता है और सतगुरु की याद और उनके चरनों में लवलीन रहता है ॥

मनमुख–औरों पर हुक्म चलाता है और सेवा लेता है और अपना मान चाहता है और बिना कुछ अपने मतलब के औरों से प्रीति नहीं करता और ख़ुशी से अपनी पूजा और प्रतिष्ठा कराता है और चरनों में लवलीन नहीं रहता है ॥

४–गुरुमुख–ग़रीबी और दीनता नहीं छोड़ता है और जब कोई उसकी निंदा करे या निरादर और अपमान करे तो दुखी नहीं होता है, बल्कि उसमें अपने लिये भलाई समझता है ॥

मनमुख–निंदा और अपमान से डरता है और अपना निरादर ख़ुशी से नहीं सहता और बड़ाई चाहता है ॥

५–गुरुमुख–सेवा में आलस नहीं करता और कभी ख़ाली बैठना नहीं चाहता ॥

मनमुख–तन का आराम चाहता है और सेवा में सुस्ती करता है ॥

६–गुरुमुख–ग़रीबी और सादगी से रहता है

और जो सामान मिल जावे, रूखा सूखा मोटा झोटा, उसी में ख़ुशी से गुज़ारा करने को तैयार रहता है ॥

मनमुख–सदा अच्छे अच्छे पदार्थों को चाहता है और उनको प्यार करता है और रूखे सूखे और ओछे पदार्थों को पसन्द नहीं करता है ॥

७–गुरुमुख–संसारी पदार्थों और दुनिया के जाल में नहीं अटकता है और उनकी लाभ और हानि में दुखी सुखी नहीं होता है और जो कोई ओछी बात कहे तो उस पर ग़ुस्सा नहीं करता है और सदा अपने जीव के कल्याण और सतगुरु की प्रसन्नता पर नज़र रखता है ॥

मनमुख–संसार और उसके पदार्थों का बड़ा ख़याल रखता है और उनकी हानि लाभ में जल्द दुखी सुखी होता है और जो कोई कड़ुआ बचन कहे तो फ़ौरन ग़ुस्से में भर आता है और सतगुरु की मेहर और समर्थता का भरोसा और ख़याल नहीं रखता है ॥

८–गुरुमुख–हर बात में सफ़ाई और सचौटी

रखता है और चित्त से उदार रहता है और औरों से सलूक करता है और औरों का फ़ायदा चाहता है और आप थोड़े में संतोष करता है और दूसरे से लेने की चाह नहीं रखता है ॥

मनमुख–लालची है। सदा औरों से लेने को तैयार रहता है और देना नहीं चाहता है और अपना फ़ायदा हर बात में विचारता है। दूसरे का ख़याल नहीं रखता और तृष्णा बढ़ाता है और सफ़ाई से नहीं बरतता है ॥

९–गुरुमुख–संसारी जीवों से बहुत प्यार नहीं करता है और भोगों की चाह और आसा नहीं रखता है और सैर तमाशे नहीं चाहता है। उसके केवल चरनों के प्राप्ति की चाह रहती है और उसी के आनन्द में आशक्त रहता है ॥

मनमुख–संसारी जीवों और पदार्थों से प्रीति करता है और भोग बिलास चाहता है और सैर तमाशे में ख़ुश होता है ॥

१०–गुरुमुख–जो काम करता है, सतगुरु की प्रसन्नता के लिये और उनसे दया और मेहर

चाहता है और सतगुरु ही की स्तुति करता है और उन्हीं की बड़ाई चाहता है और संसारी चाह नहीं रखता ॥

मनमुख–जो काम करता है, उस में कुछ न कुछ अपना मतलब या स्वाद देख लेता है क्योंकि बिना मतलब के उससे कोई काम नहीं बन सकता और सदा अपना आदर और स्तुति चाहता है और संसारी चाह उसके ज़बर रहती है ॥

११–गुरुमुख–किसी से विरोध नहीं करता बल्कि विरोधी से भी प्यार करता है और कुल कुटुम्ब ज़ात पाँत और बड़े आदमियों से दोस्ती का अपने मन में अहंकार नहीं लाता और प्रेमी और सच्चे परमार्थी जीवों से ज़्यादा प्यार करता है और सतगुरु के चरनों का प्रेम सदा जगाये रखता है और उनकी दया और मेहर नित्य प्रति विशेष हासिल करना चाहता है ॥

मनमुख–बहुत कुटुम्ब और मित्र चाहता है और धनवान और हुकूमत वालों से ज़्यादा मुहब्बत करता है और उनकी मित्रता और अपनी

ज़ात पाँत का अहंकार रखता है और दिखावे के काम बहुत करने को चाहता है और सतगुरु की प्रसन्नता का ख़्याल कम रखता है ॥

१२–गुरुमुख–ग़रीबी और मुफ़लिसी[१] से नहीं घबराता है और जो तकलीफ़ आ पड़े, उसको धीरज के साथ सहता है और सतगुरु की दया का भरोसा रखता है और उनका शुकर करता रहता है ॥

मनमुख–बहुत जल्द तकलीफ़ से घबरा कर पुकारने लगता है और निर्धनता से दुखी होकर इधर उधर शिकायत करता है ॥

१३–गुरुमुख–सब काम को मौज के हवाले करता है और चाहे भला होवे, चाहे बुरा होवे, अपना अहंकार उसमें नहीं लाता है और अपनी बात की पच्छ नहीं करता और औरों की बात को ओछी करके नहीं दिखलाता और झगड़े के कामों में नहीं पड़ता और हमेशा सतगुरु की मौज निहारता रहता है और उनका गुण गाता हुआ चलता है ॥

१ निर्धनता ।

मनमुख–सब कामों में अपना आपा ठानता है और अपने मज़े और नफ़े के लिये झगड़े और रगड़े के काम उठाता रहता है और अपनी बात की पच्छ में क्रोध करने और लड़ने को तैयार हो जाता है ॥

१४–गुरुमुख–नई नई चीज़ों में और बातों में नहीं अटकता, क्योंकि वह देखता है कि उनकी जड़ संसार है और अपने गुण संसार से छिपाये चलता है और अपनी तारीफ़ कराना नहीं चाहता है और जो कोई बात सुने या देखे, उस में अपने मतलब का नुकता जो सतगुरु की प्रीति और प्रतीत बढ़ावे, छाँट लेता है और सदा सतगुरु की महिमा गाता रहता है जो कि सब गुणों के भंडार हैं ॥

मनमुख–चाहता है कि नित्य नई नई चीज़ें देखे और नई नई बातें सुने और हर किसी का भेद और गुप्त बात दरियाफ़्त करना चाहता है और इधर उधर से बातें चुन कर अपनी बुद्धि और चतुराई बढ़ाता है और यह सब को जता कर

अपनी महिमा कराना चाहता है और अपनी स्तुति में बहुत राज़ी होता है ॥

१५-गुरुमुख-जो काम परमार्थी करता है, धीरज के साथ करता है और हमेशा सतगुरु की दया और मेहर का भरोसा और उनके चरनों में निश्चय पक्का रखता है ॥

मनमुख-हर बात में जल्दी करता है और सब काम जल्दी के साथ पूरे करना चाहता है और इस जल्दी में सतगुरु की मेहर का भरोसा और उनके बचन का निश्चय भूल भूल जाता है ॥

यह सब बातें जो गुरुमुख की चाल में वर्णन की गई हैं सो सतगुरु की मेहर से प्राप्त होंगी। जिस पर उनकी कृपा होवे, उसी को वह बख़शिश करें और जो उनके चरनों में प्रीति करते हैं और प्रतीत रखते हैं, उनको ज़रूर एक दिन यह दात मिलेगी। सतगुरु के चरनों का प्रेम सब गुणों का भंडार है। जिसको प्रेम की दात मिली, उसमें ये सब गुण आप आ जावेंगे और सब मनमुखी अंग छिन में जाते रहेंगे ॥

२६३–इस जुग में वास्ते जीव के कल्याण के सिवाय सतगुरु और शब्द भक्ति के दूसरा मार्ग और उपाय संतों ने वर्णन नहीं किया और वेद और पुराण में भी कलजुग के वास्ते यही जतन रक्खा है यानी गुरु और नाम की उपासना से जीव का कारज होगा। इसमें प्रमाण बहुत से हैं। मूर्त्ति पूजा, तीर्थ, व्रत, जप, तप, होम, यज्ञ, आचार और जाति वर्ण के कर्म और क्रिया योग यानी हठ योग और अष्टांग योग, यह सब पिछले जुगों के धर्म हैं। इस जुग में न तो यह विधि पूर्वक किसी से बन सकते हैं और न इनसे वह फल जिसमें जीव का कल्याण होवे, मिल सकता है। इस वास्ते इनका बिल्कुल निषेध है॥

जो जीव कि मन की हठ से इन कर्मों को करते हैं, उनकी हालत ग़ौर करके देख लो कि पहिले तो उनसे यह कर्म जैसे कि चाहियें, बनते ही नहीं हैं और जो कुछ ऊपरी अंग उनके करते नज़र आते हैं सो उस करनी से और अहंकार पैदा होता है और बजाय अंतःकरण की शुद्धि के इस करनी

से और पाप और मलीनता बढ़ती है। इस वास्ते मुनासिब है कि जीव धोखे में न पचें और इन कर्मों में अपने तन मन और धन को वृथा ख़र्च न करें।

और जो लोग कि इन कर्मों का उपदेश करते हैं, ग़ौर करके देखो कि वे या तो रोज़गारी हैं या अहं-कारी और अपनी जीविका या मान बड़ाई के निमित्त उपदेश करते हैं। जीव के कारज का उनको बिल्कुल ख़याल नहीं है। इस वास्ते उनका कहना नहीं मानना चाहिये॥

इस में भी संतों के बहुत प्रमाण हैं, जिनसे साफ़ ज़ाहिर है कि कलियुग में इन कर्मों के वास्ते बिल्कुल हुक्म नहीं है। और जो कि हुक्म नहीं मानते, वह या तो संसारी या रोज़गारी या अहंकारी हैं सो उनके वास्ते यह उपदेश भी नहीं है॥

समझदार और परमार्थी जीव को ज़रा से ग़ौर करने से मालूम होगा कि हक़ीक़त में यह बचन संत और महात्माओं का जो कि पिछले कर्म और धर्म के खंडन में है, सच्चा है या नहीं यानी मूर्त्ति पूजा का मतलब मन और चित्त के एकाग्र

करने का था सो अब एक खेल हो गया और कोई भी मूर्त्ति का दर्शन घंटे दो घंटे बैठ कर प्रेम प्रतीत से नहीं करता तो वह फल जो कि पिछले महात्माओं ने इस काम में रक्खा था, कैसे प्राप्त होगा ? बर-ख़िलाफ़ उसके, और मन और चित्त की वृत्तियाँ फैलीं और तमाशे में लग गईं तो बजाय फ़ायदे के और नुक़सान हुआ ॥

इसी तरह तीर्थों में पहले संत महात्मा रहते थे और जो जो वहाँ जाते थे, वह उनका दर्शन और सतसंग करके अंतःकरन की शुद्धि हासिल करते थे। अब बजाय उसके गंगा जमुना अथवा जल में स्नान करके बाक़ी वक्त बाज़ारों की सैर और सौग़ात के ख़रीद फ़रोख़्त में जाता है या भंडारे वग़ैरा के सरंजाम में और खाने पीने में ख़र्च होता है और शोर ग़ुल भीड़ भाड़ में सतसंग और अंतर वृत्ति अच्छी तरह नहीं हो सकती। इस वास्ते तीर्थ का भी फल उलटा हो गया और तीर्थ, मेले और तमाशे हो गये ॥

इसी तरह जप तप भी सिर्फ़ टेक बाँध करके

या लोग-दिखाई के लिये किये जाते हैं और मन के रोकने का उस करतूत में ज़रा ख़याल नहीं किया जाता। इसलिये उस में भी बजाय फ़ायदे के और नुक़सान होता है, क्योंकि बरसों जप करते गुज़र जाते हैं और जो हाल देखा जावे तो सिवाय इसके कि संसार की बासना और ज़्यादा हुई, कोई परमार्थी अंग की तरक़्क़ी नज़र नहीं आती॥

और जो जीव कि प्रेमी और भोले हैं, वह भी रोज़गारी और संसारियों के संग में अपना प्रेम खो बैठते हैं और मुफ़्त अपना वक़्त इन निष्फल करमों में खोते हैं॥

और क्रिया योग और अष्टांग योग का यह समय नहीं है। न तो शरीर में वह ताक़त है कि जीव काष्टा की बरदाश्त कर सके और न वह करतूत पूरी उतरे, क्योंकि उसके संजम बिलकुल नहीं बन पड़ते हैं। इस वास्ते उसका भी फल उलटा हो गया॥

इसी तरह ब्रत वग़ैरा त्योहार हो गये क्योंकि

उस रोज़ विशेष कर स्वाद के पदार्थ खाने में आते हैं और ज़्यादा तर आलस और निद्रा पैदा करते हैं। भजन बंदगी का कुछ ज़िक्र भी नहीं होता है। और अहंकार इन करमों का निहायत बढ़ता है जो कि कुल पापों का मूल पाप है।

इसी तरह और सब करमों का हाल भी देख लो और मन में विचार कर समझ लो कि अब इस वक़्त में इन करमों के करने से परमार्थ का फल कुछ भी नहीं मिलता है, बल्कि मन और चित्त को ज़्यादा मैला और अहंकारी करते हैं।

और बाज़े जीव ज्ञान की पोथियाँ जिनको वेदान्त शास्त्र का अंग बताते हैं, पढ़ते हैं और पढ़ कर उनका मनन करके अपने तईं ज्ञानी और ब्रह्म स्वरूप मानते हैं। यह सब में बड़ा विकार का मार्ग इस वक़्त में प्रगट हुआ है। पहिले तो यह कि जो ज्ञान आज कल फैल रहा है, वह वेदान्त मत के मुआफ़िक़ नहीं है। वेदान्त मत जब सही होवे कि उसके सर्व अंग पूरे होवें यानी पहिले कर्म और उपासना करके चार साधन हासिल करे,

तब ज्ञान का अधिकारी होवे सो देखने में आता है कि ज्ञान के ग्रन्थ जो अब जारी हुए हैं, उनमें कर्म और उपासना का कुछ ज़िक्र भी नहीं है और न आज कल के ज्ञानी कुछ कर्म और उपासना करते हैं। फिर उनको ज्ञान किस तरह और कहाँ से हासिल हो सकता है ? उनका बचन है कि ज्ञान के ग्रन्थ पढ़ना और उनका विचार और मनन करना, यही कर्म और उपासना है तो क्या व्यास और वशिष्ठ और पिछले ज्ञानी जो कि योग करके ज्ञान के पद को प्राप्त हुए, नादान थे कि नाहक़ उन्हों ने अपना वक़्त ख़राब किया और मेहनतें उठाईं ? ऐसा ज्ञान जो कि आज कल जारी है, निहायत आसान, हर किसी को चंद रोज़ में हासिल हो सकता है, क्योंकि दो चार ग्रन्थों का पढ़ना और समझना, यही साधन और यही सिद्धान्त है और मन के निर्मल और निश्चल करने की कुछ ज़रूरत नहीं, फिर ज्ञानी और अज्ञानी में क्या भेद हुआ ? सिर्फ़ इतना कि वह ज्ञान की बातें ज़बान से कहता है, पर बरताव में

दोनों बराबर हैं। तो बातों से जीव का उद्धार नहीं हो सकता है, क्योंकि ज़बान के कहने से जड़ चेतन की गाँठ जो कि हमेशा से योग करके खुलती रही है, हरगिज़ नहीं खुलेगी। और जो अपने मन में ख़ूब विचार कर देखा जावे तो साफ़ मालूम होगा कि इस मत से कभी जीव का कल्याण नहीं हो सकता है और न मन और इन्द्रिय बस हो सकती हैं। और जब कि पिछले युगों के कर्म अब बन नहीं सकते हैं और अष्टाँग योग भी नहीं हो सकता है तो ज्ञान जो इन कर्मों का फल था, कैसे प्राप्त होगा ? इससे ज़ाहिर है कि जो कुछ आज कल के ज्ञानी कह रहे हैं और मान रहे हैं, यह वाचक ज्ञान है। जैसे कि कोई भूखा मिठाई का ज़िक्र करे और नाम उनके तफ़सील-वार लेवे, पर इस ज़िक्र करने से न स्वाद ज़बान को हासिल होगा और न पेट भरेगा।

इस वास्ते संतों ने इस ज्ञान मत का कलियुग के वास्ते बिल्कुल निषेध किया है और जीव की मुक्ति और उद्धार सतगुरु और शब्द भक्ति से

मुक़र्रर रक्खा है और अहंकारी और विद्यावान और रोज़गारी इस पर तर्क करेंगे और इसको सुन कर नाराज़ होंगे और जो जीव सच्चे परमार्थी हैं, इस बचन को ग़ौर करके समझेंगे और मानेंगे ॥

राधास्वामी सहाय

राधास्वामी मत की पुस्तकों का सूचीपत्र

पद्य

हिन्दी

	अजिल्द	सजिल्द
१ सार बचन छंद बंद पहला भाग	२॥)	३॥)
२ सार बचन छंद बंद दूसरा भाग	२॥)	३॥)
३ प्रेम बानी पहला भाग	३)	४)
४ प्रेम बानी दूसरा भाग	३)	४)
५ प्रेम बानी तीसरा भाग	३)	४)
६ प्रेम बानी चौथा भाग	२)	३)
७ संत संग्रह पहला भाग	॥≈)	१)
८ संत संग्रह दूसरा भाग	॥≈)	१)
९ प्रेम प्रकाश	।≈)	॥।)
१० बिनती प्रार्थना	।≈)	॥।)
११ नियमावली	।≈)	॥।)

गद्य

हिन्दी

	अजिल्द	सजिल्द
१२ सार बचन बार्तिक	२)	३)
१३ आखिरी बचन स्वामी जी महाराज	≈)	
१४ प्रेम पत्र पहला भाग	३)	४)
१५ प्रेम पत्र दूसरा भाग	३)	४)
१६ प्रेम पत्र तीसरा भाग	३)	४)
१७ प्रेम पत्र चौथा भाग	३)	४)
१८ प्रेम पत्र पाँचवाँ भाग	२॥)	३॥)
१९ प्रेम पत्र छठा भाग	२)	३)
२० बचन महाराज साहब	२॥)	३॥)
२१ बचन बाबूजी महाराज पहला भाग	३)	४)
२२ बचन बाबूजी महाराज दूसरा भाग	३)	४)
२३ बचन बाबूजी महाराज तीसरा भाग	२॥)	३॥)
२४ जीवन चरित्र स्वामीजी महाराज	॥।)	१।)
२५ जीवन चरित्र हुजूर महाराज	१।)	
२६ जीवन चरित्र बाबूजी महाराज पहला भाग		३)
२७ जीवन चरित्र बाबूजी महाराज दूसरा भाग		४)
२८ जीवन चरित्र बाबूजी महाराज तीसरा भाग		३)
२९ शब्द कोष सन्तमत बानी		३)
३० जुगत प्रकाश	॥।)	१।)
३१ सार उपदेश	॥।)	१)
३२ प्रेम उपदेश	॥।)	१।)
३३ निज उपदेश	॥।)	१।)
३४ राधास्वामी मत सन्देश	॥≈)	१)
३५ राधास्वामी मत उपदेश	॥)	॥।≈)
३६ प्रश्नोत्तर सन्त मत	।–)	
३७ छाँटे हुये बचन महात्माओं के	।)	
३८ गुरु उपदेश	≈)	
३९ लोक परलोक हितकारी	१॥)	
४० मौलाना रूम के दृष्टांत और औलियाओं की कथायें	१॥)	२)

उर्दू

	अजिल्द	सजिल्द
४१ सार बचन नसर	१॥)	
४२ ख़त स्वामीजी महाराज	=)	
४३ सवालो जवाब	।=)	
४४ राधास्वामी मत सन्देश	॥=)	
४५ सार उपदेश	॥=)	

बँगला

४६ सार बचन बार्तिक		१।)
४७ सार उपदेश		।।।)
४८ प्रश्नोत्तर सन्तमत		॥)

गुजराती

	अजिल्द	सजिल्द
४६ सार बचन बार्तिक	१)	
५० राधास्वामी मत उपदेश	।)	
५१ सार उपदेश	।)	

अँग्रेज़ी

५२ राधास्वामी मत प्रकाश		१॥)
५३ डिस्कोरसेज़ ऑन राधास्वामी फ़ेथ		४)
५४ फेल्प्स साहब के नोट		२॥)
५५ सोलेस टू सतसंगीज़	।।।)	

सेक्रेटरी
राधास्वामी सतसंग
स्वामी बाग़, आगरा

लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, पुस्तकालय
Lal Bahadur Shastri National Academy of Administration Library
मसूरी
MUSSOORIE

अवाप्ति सं०
Acc. No.............................

कृपया इस पुस्तक को निम्नलिखित दिनांक या उससे पहले वापस कर दें।

Please return this book on or before the date last stamped below.

दिनांक Date	उधारकर्ता की संख्या Borrower's No.	दिनांक Date	उधारकर्ता की संख्या Borrower's No.

GL H 294.55
RAD

121367
LBSNAA

H
294.55
राधा

अवाप्ति सं० ~~13254~~
ACC. No.................

पुस्तक सं.
Book No...........

वर्ग सं.
Class No.............

लेखक स्वामीजीमहाराज
Author.............................

शीर्षक सार बचन राधास्वामी
Title........................ ~~निक~~ 1

H
294.55
राधा

~~13254~~

LIBRARY
LAL BAHADUR SHASTRI
National Academy of Administration
MUSSOORIE

*Accession No.*_

1. Books are issued for 15 days only but may have to be recalled earlier if urgently required.
2. An over-due charge of 25 Paise per day per volume will be charged.
3. Books may be renewed on request, at the discretion of the Librarian.
4. Periodicals, Rare and Reference books may not be issued and may be consulted only in the Library.
5. Books lost, defaced or injured in any way shall have to be replaced or its double price shall be paid by the borrower.

Help to keep this book fresh, clean & moving